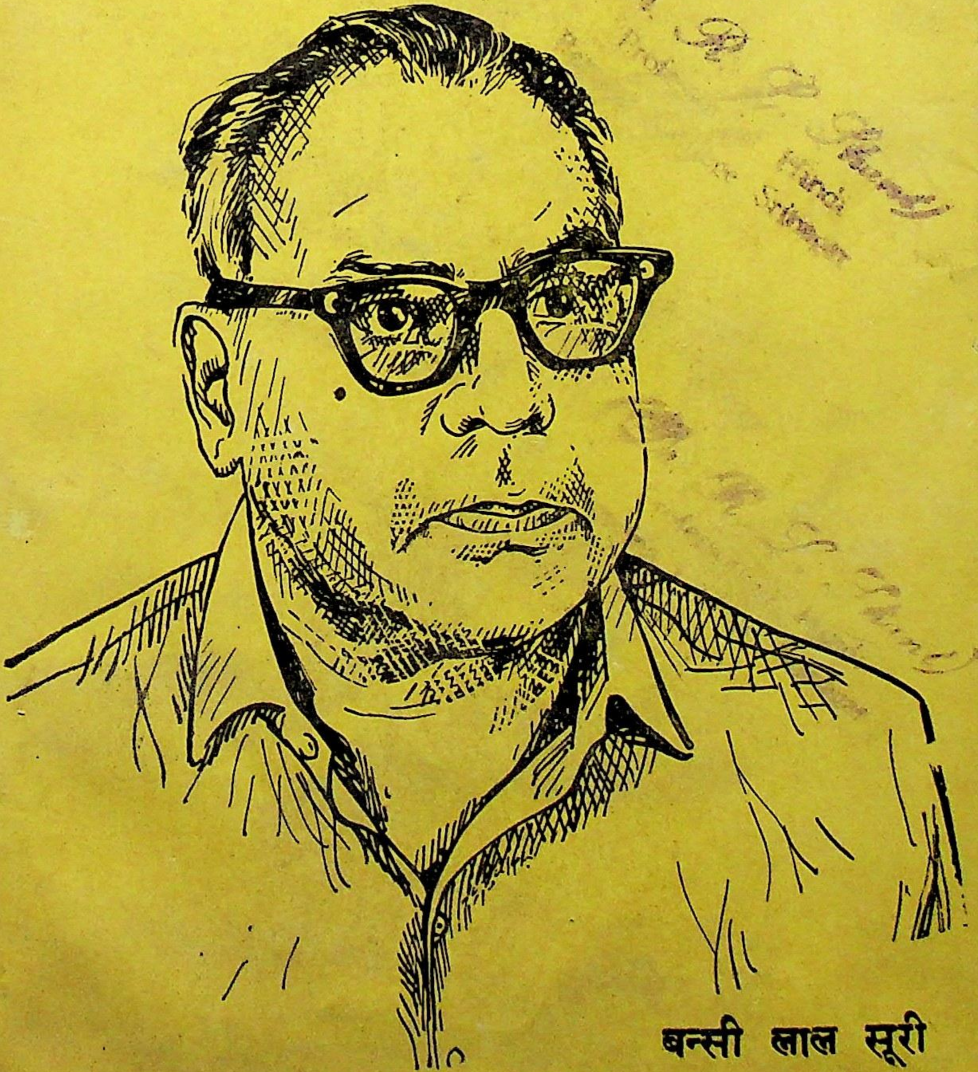
सहस्रमुखी



बन्सी लाल सूरी

सहस्रमुखी

स्व० बंसी लाल सूरी की
प्रतिनिधि कविताओं का संकलन

सम्पादक:
रमेश मेहता

मूल्य : १४.५० रुपये/प्रथम संस्करण, १९७५ / ©: अकादमी /
प्रकाशक : ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू /
मुद्रक : स्पेसएज प्रिंटर्ज, महेशी गेट, जम्मू ।
SAHASRAMUKHI edited by Ramesh Mehta.

प्रकाशकीय

जम्मू - कश्मीर के अनन्य हिन्दी सेवी स्व० बन्सी लाल सूरी ने अपने जीवन काल में प्रचुर साहित्य रचना की थी, यह अलग बात है कि अपनी रचनाओं को प्रकाशित पुस्तक के रूप में देखने की उन की इच्छा उनके जीवनकाल में पूरी न हो सकी। 'अकादमी' ने इस उत्तरदायित्व को वहन करने का निश्चय किया और अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए उनकी प्रतिनिधि कविताओं को पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है।

कविता के प्रचलित सामान्य मापदण्डों के अनुसार इन कविताओं का शिल्प अनगढ़ लग सकता है। इसे आप इनकी विशेषता कह सकते हैं और चाहें तो कमी भी। कारण ?—श्री बन्सीलाल सूरी आध्यात्मिक शर्तों पर भौतिकता के साथ निर्वाह करते हुए काव्य - रचना करते थे। शिल्प के धरातल पर उन्होंने 'गद्य-गीत' की विधा को चुना था। अपने कथ्य को सम्प्रेषित करने के लिए वे भिन्न-भिन्न बिम्बों का समायोजन करते चलते हैं। ऐसा करने में वे कभी जड़ बनते हैं, कभी प्रेयसी और कभी वकील। भिन्न प्रवृत्तियों एवं पेशों के माध्यम से वे अपनी बात कहने के लिए उपकरण जुटाते हैं। ऐसा करते हुए कहीं कहीं उनकी कविता में दरारें रह जाती हैं। कहा नहीं जा सकता कि ये कवितायें उनके जीवनकाल में प्रकाशित होतीं तो वे इन का पुनरावलोकन पसन्द

करते या नहीं। सम्पादक के नाते मेरा यह दायित्व था कि मैं यदि कहीं कमी का अनुभव करूं तो उसे दूर करने का प्रयत्न करूं किन्तु जहां कहीं मुझे कोई दरार महसूस हुई मैंने जानबूझ कर उसे जस का तस रहने दिया है, भय था कि श्री सूरी के कृतित्व में रमेश मेहता का कृतित्व गड़मड़ न हो जाये। मैं समझता हूं कि यह उचित ही था।

आशा है कि हिन्दी जगत इस कृति का समुचित स्वागत करेगा।

—रमेश मेहता

अनुक्रम

स्व० बंसीलाल सूरी
एक बहुविध व्यक्तित्व

●धर्मचन्द्र 'प्रशान्त'

स्व० बंसीलाल सूरी का जीवन तीन भागों में बंटा था। मुख्यत: उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में काम किया और उसके उपरान्त उनका राजनीतिक जीवन और फिर साहित्यिक। कुछ समय तक वे पत्रकार भी रहे।

ऐसे व्यक्ति कम ही होंगे जिन्होंने विविध क्षेत्रों में कार्य किया हो और प्रत्येक स्थान पर यश ही उपार्जित किया हो। इस प्रकार से उन्हें अपने जीवन में बहुमुखी प्रसिद्धी प्राप्त करने का सौभाग्य मिला, यह बात अधिक लोगों पर जोड़ी नहीं जा सकती।

इन बातों के अतिरिक्त श्री सूरी उच्चतम आचार-विचारों के व्यक्ति थे। उनका चरित्र उज्ज्वल रहा और उनकी जीवनी की सफेद चादर पर कभी भी काला दाग लगने नहीं पाया। बड़े-बड़े साहित्यकारों और सामाजिक नेताओं पर भी कभी कभी लान्छन लग ही जाते हैं। वे राजनीतिज्ञ थे और राजनीति कभी कभी काजर की कोठरी बन जाती है जिसमें से जाने वाले पर काजर की लकीर लग ही जाया करती है।

काजर की कोठरी में चाहे कैसो ही सयानो जात।
एक लीक काजर की लागै ही पै लागै है॥

उन्होंने राजनीति में धन व अधिकार-लिप्सा के लिये प्रवेश नहीं किया। वे राजनीति को देशसेवा के लिये साधन मात्र समझते रहे और उन्होंने कभी भी इसे धन कमाने का धंधा नहीं समझा। यही कारण है कि उनकी सभी लोग प्रशंसा करते रहे और मृत्यु के बाद भी कर रहे हैं। अत: ऐसे व्यक्ति की जीवनी लिखना भी सौभाग्य की बात है।

मैं पक्की ढक्की मिडल स्कूल में छठी श्रेणी में पढ़ रहा था जब मैंने प्रथम बार स्व० बंसीलाल के दर्शन किये। वे उन दिनों कालेज में पढ़ रहे थे और स्व० पण्डित हरदत्त जी से मिलने आये थे। मैं उस समय हरदत्त जी की संस्कृत कक्षा का विद्यार्थी था। उन्हें देख कर उत्सुकता हुई कि पण्डित जी से पूछूं कि यह साहब कौन हैं? वे सम्भवत: लाहौर की बात कर रहे थे और वहां के वातावरण के विषय में बता रहे थे। वे चले गये तो पूछने पर पण्डित जी ने कहा कि इनका नाम बंसीलाल है और मेरे प्रिय शिष्य रहे हैं। उसके उपरान्त मेरा उनसे कभी भी साक्षात्कार नहीं हुआ। कभी बात चीत का भी अवसर नहीं मिला। मेरी आयु उनसे बड़ी छोटी थी।

सूरी जी जिस सामाजिक क्षेत्र में कार्य कर रहे थे, उसी में मैं भी संयोगवश आ पड़ा। वह क्षेत्र हिन्दी प्रचार का था। १९३६ में मैं कालेज में था तो हमने जम्मू में हिन्दी प्रचार के लिये एक हिन्दी संस्था का बनाना आवश्यक समझा। संस्था हिन्दी प्रचारिणी सभा के रूप में प्रकट हुई जिसके मंत्री सूरी जी निर्वाचित हुये और मैं सहायक मंत्री। तब से हिन्दी प्रचार और साहित्य प्रसार में हमने इकट्ठे ही काम किया। हमारा सम्बन्ध केवल हिन्दी द्वारा हुआ और उसी में अन्त तक रहा। राजनीति में मैं कभी उनके साथ नहीं रहा। परन्तु उनका राजनीतिक जीवन सदा मेरे सामने था। वे इस सम्बन्ध में मेरे साथ चर्चा किया करते थे।

श्री सूरी का जीवन बड़ा विस्तारपूर्ण नहीं है। उनका जीवन सादा और निष्कलङ्क था। उनमें कभी कुटिलता दिखाई

नहीं दी। राजनीति में उन्हें कभी हेर-फेर करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। यही कारण था कि उन्होंने सारा जीवन एक साधारण व्यक्ति की तरह बिताया। उनकी आर्थिक दशा भी कोई बड़ी सन्तोषप्रद नहीं थी।

श्री बंसीलाल सूरी का जन्म ६ जनवरी १९१३ को पक्का-डंगा की एक बंद और संकीर्ण गली में हुआ। उनके पिता का नाम श्री शिवरामदास था जिनकी मण्डी बाजार में सोडे की बड़ी प्रसिद्ध दुकान थी। उनके एक बड़े भाई लाला बैसाखी राम थे और तीन छोटे—मोहनलाल, स्व० मुलखराज और सतीश थे। पांचों भाइयों में पूर्ण विद्या प्राप्त करने का सौभाग्य श्री बंसीलाल को ही मिल सका। शेष भाई लगभग व्यापार में ही लगे रहे।

उन्होंने पांचवीं कक्षा प्राईमरी स्कूल और उसके उपरान्त तीन वर्ष पक्की ढक्की मिडल स्कूल में आठवीं श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त करने में बिताये। आठवीं में वे प्रथम आये और उसके बाद दो वर्ष में श्री रणवीर हाई स्कूल से उन्होंने दसवीं पास कर ली। दसवीं श्रेणी उन्होंने प्रथम डिवीज़न में १९२८ में पास की थी। उसके बाद वे प्रिंस आफ़ वेल्ज कालेज जम्मू में दाखिल हुये और १९३० में वे बारहवीं श्रेणी में प्रथम डिवीजन में उत्तीर्ण हुये। कालेज में प्राध्यापक उनसे बड़ा स्नेह करते थे। प्रोफैसर सहाय के वे प्रिय शिष्य थे। एफ़-ए में उत्तीर्ण होकर उन्होंने बी-ए करने का निश्चय किया और प्रवेश पत्र भी भर दिया। वह समय १९३० का था जब गान्धी जी को असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने के अभियोग में पकड़ लिया गया और साथ ही और भी असंख्य नेता कारा-वास में चले गये।

उसी दिन जम्मू में बड़ा भारी आन्दोलन हुआ जिसमें कालेज के विद्यार्थियों ने बढ़चढ़ कर भाग लिया। बंसीलाल विद्यार्थियों का नेतृत्व कर रहे थे। नगर में विदेशी कपड़ों की होली जलाई गयी। एक गधे को अंगरेज बना कर उसके सिर पर हैट रखी गयी। उन दिनों श्री वेकफील्ड रियासत के उच्च अधिकारी थे। उनमें

प्रतिहिंसा की भावना प्रज्वलित हुई। कई व्यक्ति पकड़ लिये गये और विद्यार्थियों पर तो उसका कोप और भी अधिक हुआ। वेकफील्ड ने आज्ञा दी कि जिन विद्यार्थियों ने जुलूस निकाला है और आपत्तिजनक नारे लगाये हैं उन्हें माफी मांगने पर छोड़ दिया जाये परन्तु जो क्षमा याचना नहीं करते उन्हें दण्ड दिया जाये। जब बंसीलाल जी से पूछा गया तो वे क्षमा माँगना तो दूर अपना कसूर मानने के लिये भी तैयार नहीं हुये। उसका परिणाम यह हुआ कि कालेज में उन्हें बी० ए० में प्रवेश नहीं मिल सका। आखिर उन्हें लाहौर में प्रविष्ट कराने का निश्चय किया गया। वे जम्मू छोड़ कर लाहौर चले गये। अन्य विद्यार्थी क्षमा मांगने पर छोड़ दिये गये थे।

सूरी साहब ने जम्मू से एफ-ए पास का जो सार्टिफिकेट लिया उस पर कैरेक्टर (आचार) को काट कर कण्डक्ट लिख दिया गया था परन्तु डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के प्रिंसीपल ने उस पर कोई आपत्ति नहीं की और उन्हें प्रवेशाज्ञा प्राप्त हो गयी। श्री सूरी इस बात का वर्णन अपने सहयोगियों से प्रायः किया करते थे। १९३२ में डी० ए० वी० कालेज, लाहौर से बी-ए की उपाधि पाकर वे जम्मू आ गये। यहां आकर उन्होंने हिन्दी की प्रथम मासिक पत्रिका 'वसुधा' निकाली। उन्हें हिन्दी के यशस्वी पत्रकार श्री सन्तराम 'विचित्र' सहयोगी के रूप में मिल गये।

१९३२ में वैशाख मास में उनका विवाह हुआ और उन्हीं दिनों जम्मू में पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। सम्मेलन के सभापति लाला देवराज और स्वागताध्यक्ष स्व० पण्डित श्रीचन्द थे। कन्या महाविद्यालय जालन्धर की छात्राओं ने उसमें विशेष रूप से भाग लिया जिसके कारण अधिवेशन बड़े महत्व का रहा। श्री बंसी लाल का सहयोग उसमें प्रशंसनीय था। उसी अधिवेशन में "वसुधा" का प्रथम अंक वितरित किया गया।

'वसुधा' का रूप-रंग आकर्षक था। उसमें सामग्री उच्च-कोटि की थी। यहां तक कि उसमें उस समय के माल मंत्री श्री एन० सी० मेहता का लेख भी छपा था। 'वसुधा' के तीन ही अंक छप सके और

उसके उपरान्त वह बन्द हो गयी। 'वसुधा' के प्रकाशन के बंद हो जाने पर सब को खेद हुआ और बंसीलाल सूरी की तो कितने ही वर्षों तक 'वसुधा' का ज़िक्र छिड़ जाने पर आंखें भर आती थीं। पत्रिका के बंद होने का कारण आर्थिक संकट था। 'वसुधा' के उपरान्त कुछ और हिन्दी पत्र और पत्रिकायें जम्मू से निकलीं परन्तु एक एक कर के समाप्त होती गयीं।

इसके उपरान्त बंसीलाल जी के पिता और बड़े भाई ने उन्हें एल-एल-बी पास करने के लिये लाहौर भेज दिया। वहां से वे १९३५ में वकील की सनद ले कर आ गये। जम्मू नगर के बजाय वे उधमपुर चले गये और वहां पर प्रारम्भिक वकालत करते रहे। वे कहा करते थे कि उधमपुर का वातावरण न साहित्यिक है और न उनकी इच्छा के मुताबिक; परन्तु जिस उद्देश्य को लेकर वे वहां गये थे उसकी सफलता के लिये भरसक प्रयत्न करते रहे।

उधमपुर में उन्हें आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था, परन्तु वे हताश बिलकुल नहीं हुये। वहां उनके सहयोगी कम थे। समय काटने के लिये वे लेख लिखा करते थे जो लाहौर के पत्रों में छपा करते थे। स्वाध्याय के लिये भी उन्हें ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते थे।

राजनीति के प्रति उनकी रुचि उधमपुर में ही जाग्रत हुई। वैसे तो वे विद्यार्थी जीवन में ही राजनीति को अपने जीवन का मुख्य अंग मान चुके थे। उधमपुर में कश्मीर नेशनल कान्फरेंस के नेता राज्यसत्ता के विरुद्ध क्रान्ति उत्पन्न करने के विरुद्ध पकड़ कर रखे गये। वहीं पर उनमें कुछ से उनको जेल में मिलने का अवसर मिला। उनमें स्व० गुलाम मुहम्मद सादिक का नाम उल्लेखनीय है। इस बात का ज़िक्र सादिक साहब ने कई बार सूरी साहब से किया था।

उधमपुर में सूरी साहब चार वर्ष से ऊपर वकालत करते रहे और फिर जम्मू चले आये। यहां आकर उन्होंने दत्तचित्त होकर

प्रैक्टिस आरम्भ कर दी। प्रारम्भ में उन्हें यहां भी कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा। परन्तु बाद में वकालत में उनके पांव जम गये।

१९४२ में जम्मू में हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना की गयी। उसका प्रथम निर्वाचन आर्य समाज पुरानी मण्डी में हुआ था जिसमें वे मंत्री बने और मैं सहायक मंत्री। हिन्दी प्रचारिणी सभा का जम्मू के जनजीवन में विशेष स्थान बन गया। वे सभा के कार्यकर्त्ताओं से कहा करते थे कि हिन्दी का प्रचार और प्रसार धर्मनिरपेक्षता के उद्देश्यों के अनुसार होगा। वे मुसलमानों में भी हिन्दी प्रचार किया करते थे और यहां तक कि एक दिन ईद के अवसर पर उर्दू मुशायरे में कविता पढ़ने हम लोग भी चले गये थे।

हिन्दी प्रचार का कार्य बिना किसी की साम्प्रदायिक भावनाओं को उत्तेजित किये हो रहा था। सूरी साहब १९४६ तक सभा के मंत्री रहे और उन्हीं के कारण सभा के कार्य में कभी बाधा नहीं पड़ी। एक बार हम राज्य के प्रधान मंत्री स्व० गोपालास्वामी आयंगर से मिलने गये तो सभा की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की। यहां तक कि सरकारी गजट में सभा का एक बार वर्णन भी हुआ था।

श्री गोपालास्वामी के जम्मू-कश्मीर से चले जाने के उपरान्त दूसरे प्रधान मंत्री सर महाराजसिंह से प्रचारिणी के शिष्टमण्डल उन से हिन्दी के प्रति सुविधायें प्राप्त करने के लिये मिलते रहे।

उन्हीं दिनों श्री जवाहरलाल नेहरू जम्मू आये और हम लोग उनसे मिले। जब सूरी साहब ने उनसे कहा कि सभा साम्प्रदायिकता से दूर रहकर ही हिन्दी प्रचार का काम कर रही है तो वे बड़े प्रसन्न हुये और कहने लगे आप का कार्य ठीक है। इसी प्रकार करते रहो।

हिन्दी प्रचारिणी सभा का काम बड़ा विस्तृत हो गया। १९४३ में यहां शिक्षा निदेशक बनकर स्व० सैयदैन अलीगढ़ से चले आये। आरम्भ में उन्होंने अच्छा काम किया परन्तु बाद में उन्हीं

द्वारा हिन्दी पर कुठाराघात होने लग पड़े। उसके लिये सूरी साहब को एक शान्त आन्दोलन चलाना पड़ा था और अन्त में उन्हें सफलता मिली। उन्हें एक बार यहां के प्रधान मंत्री सर बी० एन० राव से भी टक्कर लेनी पड़ी थी।

हिन्दी प्रचार के साथ साथ वे राजनीति में भी उतर पड़े थे। किसी अन्य संस्था में सम्मिलित होने की अपेक्षा उन्होंने नेशनल कान्फरेंस में काम करना उचित समझा। वे इस संस्था के प्रत्येक जलसे में शामिल होते और प्रचार करते रहते थे। उन्हें शेख मुहम्मद अबदुल्ला ने केन्द्रीय समिति का सदस्य भी चुन लिया। वे समिति की प्रत्येक बैठक में सम्मिलित होने श्रीनगर जाया करते थे।

इस बात का उल्लेख किये बिना मैं नहीं रह सकता कि उस समय श्री सूरी का विरोध हिन्दू और मुस्लिम मञ्च पर खुले आम होता था। यहां के कई पत्रों में भी उनपर चोटें की जाती थीं परन्तु वे अपने आदर्शों पर दृढ़ रहे और उन्होंने कभी भी किसी की परवाह न की। १९४७ तक नेशनल कान्फरेंस को जम्मू में अछूत का दर्जा साम्प्रदायिक क्षेत्रों ने दे रखा था परन्तु सूरी जी पर इस बात का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। मजे की बात यह थी कि उनके हिन्दू व मुसलमान नेताओं से मिलने में कमी नहीं आई, वे जिससे भी मिलते बड़े सौहार्द से मिलते।

१९४५ में हिन्दी प्रचारिणी सभा का विशेष अधिवेशन जम्मू में सम्पन्न हुआ। उसके लिये बड़ी तैयारियां हो रही थीं। उसके स्वागताध्यक्ष स्व० ठाकुर दास रिटायर्ड जज थे। अधिवेशन बड़ी धूमधाम से हुआ। सभा की प्रधान शान्ता कुमारी थीं।

रात के समय बड़ी भारी संख्या में जनता अधिवेशन की कार्य-वाही सुन रही थी। वहां पर एक कश्मीरी नेता ने नेशनल कान्फरेंस के हिन्दी विरोधी कार्य की निन्दा आरम्भ की। हिन्दी के प्रति उन्हें इतना प्रेम था कि वे सहन न कर सके और उसपर उन्होंने

नेश्नल कान्फरेंस की कार्यकारिणी से त्याग-पत्र देने की घोषणा की और दूसरे दिन वह भेज भी दिया।

उस समय लोगों ने तालियां बजाईं और कइयों को दुख भी हुआ। बाद में उन्होंने कहा कि वे भावना में बह गये थे। उस समय मुजफ्फराबाद में हिन्दू सम्मेलन होने जा रहा था जिसके सभापति स्व० विष्णु गुप्त वैद्य मनोनीत हो चुके थे। वे उसी समय से प्रयत्नशील हो गये कि सूरी साहब हिन्दू सभा में सम्मिलित हो जायें और आने वाले अधिवेशन में सभा के मंत्री पद के कार्य को सम्भाल लें। सूरी साहब को कई व्यक्ति मिले और वे यही सुझाव देते रहे कि उन्हें हिन्दू सभा में आ जाना चाहिये। वे माने तो नहीं परन्तु इस पर सोच-विचार करते रहे।

उन्हीं दिनों वैद्य विष्णुगुप्त मुजफ़राबाद अधिवेशन के लिये अपना अभिभाषण लिख रहे थे और उसमें सूरी साहब से परामर्श ले रहे थे। उस में स्व० वैद्य ने साम्प्रदायिकता का इतना प्रचण्ड रूप प्रकट किया कि सूरी साहब तिलमिला उठे। सायं काल के समय मैंने उनसे पूछा कि क्या अभिभाषण समाप्त हो गया है? उस पर सूरी साहब क्रुद्ध होकर बोल उठे ऐसी संस्था का मंत्री बनने को मैं तैयार नहीं हूं जिस में अभिभाषणों में इतनी जहरीली बातें कही गई हों। उन्होंने कहा मैंने पक्का इरादा कर लिया है कि हिन्दू सभा में सम्मिलित नहीं हूंगा। उन्होंने दूसरे दिन शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को पत्र लिखा कि मैं अपना त्याग-पत्र वापिस लेता हूं। वे पुनः नेश्नल कान्फरेंस में चले गये और अन्त तक वे इसी में रहे। परन्तु जब यह संस्था कांग्रेस में विलय हो गयी तो वे भी कांग्रेस के सदस्य हो गये। इस विषय में यह भी कहा जाता रहा है कि सूरी साहब ने यदि नेश्नल कान्फरेंस से १९४५ में त्याग-पत्र नहीं दिया होता तो सम्भवतः १९४७ की लोकतान्त्रिक सरकार में वे मंत्री ले लिये जाते।

नेश्नल कान्फरेंस में वे दक्षिण पंथी थे। १९४७ में यह संस्था वामपक्ष से भरी थी और इस के मञ्च पर से साम्यवाद का खुला

प्रचार भी किया जा रहा था। सूरी साहब की वामपक्ष वालों से बिलकुल पटती नहीं थी। यह रस्साकशी देर तक चलती रही परन्तु उन्होंने अपने ध्येय को छोड़ा नहीं। वे दक्षिण पंथी रास्ते पर जमे रहे। १९४७ के उपरान्त नयी सरकार में पुराने नेश्नल कान्फरेंस वालों ने अधिकार प्राप्त किये और अपना प्रभाव भी जनता में जमाया परन्तु सूरी साहब इन बातों से दूर ही रहते रहे।

वे वकालत करते थे और सरकारी वकील का भी कार्य करते थे जिस पर उन्हें चार सौ रुपये से अधिक नहीं मिला। यहां तक वकालत का सम्बन्ध है उसमें भी उन्होंने हेरफेर नहीं किया। वे इस व्यवसाय को साफ सुथरा समझते रहे, इसमें भी उन्होंने अपने कर्त्तव्य को ही निभाया। वे अपने मित्रों और निर्धनों के मुकद्दमों में बिना फीस लिये पैरवी करते थे। यदि कोई कहे कि मुझ में पूरा मेहनताना देने की सामर्थ्य नहीं तो सूरी साहब थोड़े पर ही राजी हो जाया करते थे। यही कारण था कि वकीलों और लोगों में भी उनके प्रति आदर था।

श्री बंसीलाल की अन्य सब बातों से उच्च उनका चरित्र था। वे चरित्र को ऊपर उठाये रखने के लिये बड़े प्रयत्नशील रहे। उन्होंने कभी किसी को बुरा नहीं कहा, कभी किसी की निंदा नहीं की। किसी से द्वेष नहीं किया। किसी भी षड़यन्त्र के चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे सामाजिक, वह निकट नहीं आये। इतना उज्ज्वल चरित्र थोड़े ही व्यक्तियों का देखा गया है। इसके अतिरिक्त उन्हें क्रोध में आते कम ही देखा गया। बड़ी से बड़ी विपत्ती पर भी वे अपने मानसिक संतुलन को खो नहीं देते थे। यही कारण है कि चरित्र-निर्माण का प्रभाव उनकी सन्तान पर भी पड़ा और उनके मित्रों पर भी। वे चरित्र भ्रष्ट लोगों से सदा दूर ही रहते थे।

धर्मनिरपेक्षता के प्रति उनकी जितनी निष्ठा थी, उसका भी यहां जिक्र करना आवश्यक प्रतीत होता है। कुछ लोग केवल दिखलावे के लिये राष्ट्रवादी विचारधारा के अनुयायी

बनते हैं और परीक्षा के समय उनका असली रूप सामने आ जाता है। श्री सूरी मन और वचन से राष्ट्रीय-विचार धारा के व्यक्ति थे। उन्होंने सामने कुछ और पीठ के पीछे कुछ वाली नीति को कभी नहीं अपनाया। यह उनका महान् गुण था।

नेशनल कान्फरेंस से त्याग-पत्र देने के उपरान्त उन्होंने एक दो बार सोचा कि वे हिन्दू सभा में शामिल हो जायें परन्तु उनकी आत्मा ने नहीं माना। हालांकि उस समय जम्मू का वातावरण इस प्रकार का था कि कोई भी व्यक्ति हिन्दू संस्था से अपना सम्बन्ध बतला कर अपने को गौरववान समझने लगता था और इसीलिये जम्मू में नेशनल कान्फ्रेंसी १०–१२ से अधिक नहीं थे।

जब मुजफ्फराबाद में हिन्दू सभा का अधिवेशन हुआ और कविराज विष्णुगुप्त ने अपना अभिभाषण पढ़ा तो दूसरे ही दिन वहां हिन्दू-मुसलमान संघर्ष हो गया जिसमें कई व्यक्ति घायल हो गये। उन दिनों रियासत के प्रधान मंत्री श्री बी० एन० राव थे। उस अभिभाषण में उनकी खूब भर्त्सना की गयी थी। इस पर तो नहीं परन्तु मुजफ्फराबाद में दंगा होने के फलस्वरूप कविराज जी की गिरफ्तारी का आदेश जारी हो गया। कविराज फिर श्री सूरी के पास परामर्श लेने आ गये। उन्होंने एक वकील के नाते उन्हें उचित सलाह दी और कविराज पकड़े जाने से बच गये।

वे उर्दू और हिन्दी में लेख लिखा करते थे परन्तु उन्हें किसी साम्प्रदायिक पत्र में छपवाने के लिये तैयार नहीं होते थे। 'वसुधा' में उनके उग्र लेखों से भी उनका देशप्रेम और राष्ट्रीय भावना का पूरा परिचय मिलता था।

श्री सूरी सनातनधर्म के अनुयायी थे परन्तु वे कट्टर पंथी नहीं थे। इस विषय में वे बिल्कुल स्वतन्त्र विचार रखते थे। किसी भी बात पर उन्होंने संकीर्णता अथवा कट्टरता नहीं दिखलाई।

सायं काल के समय भ्रमण करना उनका प्रति दिन के कार्य-

क्रम में शामिल था। वे अपने एक मित्र के साथ रामनगर रोज जाया करते थे और वहां से देर से लौटते। एक दिन वहां बड़ी दिलचस्प घटना हो गयी।

रात के समय कोई सात आठ फुट लम्बा एक व्यक्ति नीचे से ऊपर तक बिल्कुल नग्न सड़क पर से आ रहा था। इन्होंने उसे देख लिया और यही समझा कि वह कोई भूत है। भयभीत हो कर भाग कर एक पुली के नीचे छुप गये। वह ऊपर से निकल गया और उस पुली को कंपाता गया। थोड़ी देर बाद वे ऊपर आये और शीघ्र ही घर पहुंच गये। उसके उपरान्त वे कभी भी रामनगर भ्रमण करने नहीं गये।

इस घटना का वे कई बार ज़िक्र किया करते थे परन्तु ठीक-ठीक नहीं बतला सकते थे। इतना तो मानते थे कि भूत-प्रेत के अस्तित्व पर अविश्वास भी नहीं किया जा सकता है। इससे केवल उनके मन की कोमलता का पता चलता था।

जम्मू में १९४३ में रोटी आन्दोलन खड़ा हो गया। उस समय यहां के प्रधान मंत्री श्री हकसर थे। उस आन्दोलन में कोई आठ व्यक्ति पुलिस की गोली से मर गये। उनमें आधे मुसलमान थे। उन दिनों हिन्दू-मुसलमानों का जितना सहयोग हुआ, उतना न तो पहले कभी हुआ था और न बाद में हो सका। उस आन्दोलन में सूरी साहब का पूरा सहयोग था। महाराजा साहब ने उस दुर्घटना पर एक जांच कमीशन नियुक्त किया, जिसके तीन सदस्य थे। कमीशन के सामने गवाहों को भुगताना और वकीलों को सहयोग देना उन्हीं का काम था। जनता की ओर से अमृतसर के प्रसिद्ध वकील डाक्टर किचलू और सरकार की ओर से स्व० लोकनाथ एडवोकेट वकील थे। उन दिनों सूरी साहब बड़े व्यस्त रहते थे। वह मुकद्दमा बड़ी देर तक चलता रहा और अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त श्री बंसीलाल सूरी नियमित रूप से उस में व्यस्त रहे। उन्हें अपनी वकालत का क़ाम भी कुछ देर के लिये छोड़ देना पड़ा था।

वे किसी काम में उतावली नहीं करते थे। हर बात बड़ी

सोच समझ कर करते। कभी भी अनर्गल बात उनके मुख से नहीं निकलती थी। अदालत के सामने भी वे सदा बड़े धैर्य से बोलते थे।

कुछ समय तक वे व्यायाम और सांस्कृतिक कार्यों में भी दिलचस्पी लेते रहे थे। वेद मन्दिर जम्मू में अभिमन्यु आश्रम खोला गया था। उसमें उनका पूर्ण सहयोग रहा। व्यायाम सम्बन्धी सभी कार्य वे बड़ी दिलचस्पी से करते थे। इसके अतिरिक्त रामलीलाओं और नाटकों में अभिनेता के रूप में भी कई बार उतर चुके थे। सीता का अभिनय उन्होंने बड़ी सफलता से किया।

कुछ सामाजिक संस्थाओं के भी वे प्रधान थे जिनमें खुखरान बिरादरी, डोगरा खत्री सभा और सेवा-समिति प्रमुख थीं। उन्होंने जिस जिस संस्था में प्रधान अथवा सदस्य के रूप में काम किया उस में पूरी रुचि दिखलाई। कभी भी आधे हृदय से कहीं नहीं गये। जो भी कार्यभार उनपर डाला गया, उसे पूर्ण लग्नता से किया।

एक साहित्यकार के रूप में

श्री सूरी ने कितने ही क्षेत्रों में काम किया है और उनमें सफलता प्राप्त की परन्तु जितनी उनकी रुचि साहित्य में प्रकट हुई, वह अन्य स्थानों से भी अधिक चमकी। उन्हें साहित्य में बड़ी रुचि थी। कविता, कहानी और आलोचना पढ़ने का उन्हें शौक था परन्तु कभी कलम कविता के लिये नहीं पकड़ी थी। वैसे फुटकर लेख लिखते रहते थे परन्तु कविता लिखने में वे कभी आगे नहीं आये।

१९४७ के उपरान्त हिन्दी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य मण्डल समाप्त हो चुके थे। वे कोई चौदह वर्ष तक मृतक रूप में पड़े रहे। प्रचारिणी सभा का पुनर्जन्म तो न हो सका परन्तु हिन्दी साहित्य मण्डल को फिर प्राण मिल गये और उसकी प्रधानता के लिये मुझे श्री सूरी के अतिरिक्त और कोई नहीं मिला। कितने ही वर्ष वे इसके कर्णधार के रूप में काम करते रहे। मण्डल में ही उन्होंने गद्यगीत लिखने का प्रयास आरम्भ किया।

यदि मैं भूल नहीं रहा हूं तो प्रथम गद्यगीत उन का "जंगल राज" था। वह गीत उन्होंने मण्डल की गोष्ठी में सुनाया और बाद में मेरे हवाले कर दिया कि यदि इसमें कुछ संशोधन करना हो या कहीं छपवाना हो तो प्रकाशित मैं ही कर दूं।

उक्त कविता इस संग्रह में छपी भी है:

जंगल राज
क्या अराजक राज
नहीं,
पल्लव, सुगन्ध, रंग और
रम्यता राज।

उपरोक्त गीत में उन्हें प्रेरणा भारत में, विशेष रूप में, कलकत्ता और बंगाल के कुछ नगरों में घटी अहिंसापूर्ण घटनायें थीं जिन में बम गिरा कर विध्वंसक शक्तियां तोड़-फोड़ का कार्य कर रही थीं। श्री सूरी उस से निराश नहीं थे। वे उसके उपरान्त सुगन्ध और रंग देख रहे थे। इससे प्रतीत होता है कि वे बिल्कुल निराशावादी नहीं थे। वे अन्धकार में भी उषा सुन्दरी की मधु मुस्कान देखते हैं। कलुषित छाया में भी इन्द्रधनुषी छटा का अवलोकन करते हैं।

उन्होंने कोई १०० के लगभग गद्यगीत लिखे हैं जिन में अध्यात्मवाद है और प्रत्येक पदावलि में काव्य-रस का स्रोत बहता दिखलाई पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति जिसे कविता माधुरी से थोड़ा भी प्रेम हो, वह इन गीतों को पढ़कर आत्मविभोर हो उठेगा। प्रत्येक गीत उनके आन्तरिक उल्लास का परिचय देता है, उनके हृदय के उद्गार प्रति शब्द में प्रस्फुटित हो उठे हैं।

'गुप्त नेत्र' गीत में उन्हें अनन्त सौंदर्य का अपने हृदय में ही आभास हो उठा है। वह किसी अनन्त रमणीयता पर मुग्ध हैं जिस में उन्हें इन्द्रधनुष के रंगों का ज्ञान हो उठा है। नगर के कृत्रिम वातावरण से दूर अपने अन्तस्तल की समस्त व्यथा को भुला कर,

खिन्नावस्था को त्याग और हृदय की पीड़ा का उन्मूलन कर प्रिय समागम की अनुभूति का वर्णन कर रहे हैं।

उनके रचित कुछ गीत ऐसे हैं जिनका मनन कर समस्त चेतना विलुप्त हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे जीवन की सार्थकता समझते हैं जिसमें मानो वे सजीवता, मधुरता और कमनीयता का अवलोकन कर रहे हैं।

मैं कभी
अनन्य लावण्यमयी
रमणी थी,
यौवन - रमणीयता की
विश्व-प्रतियोगिता में
मैंने
सौंदर्य - सम्राज्ञी का
पद पाया था।

उनकी कई पंक्तियां प्रेमामृत धारा बहाती प्रतीत होती हैं। हृदय में स्नेह और आनन्द की तरंगें उठने लगती हैं और ऐसा जान पड़ता है कि एक एक गीत द्वारा अनुराग रंग में रंग गये हैं।

उन्हें सम्भोग सुख की अनुभूति प्रतीत होती है और उसी समय वे कल्पना से रञ्जित कर उसे नवीन रूप प्रदान करते हैं। प्रथम वे रूप माधुरी का अनुभव करते हैं तो उसी समय मनः स्थिति बदल देते हैं और उन के लिये समस्त विश्व प्रियमय हो जाता है।

मैं स्वयं
प्यार पुंज प्रेमिक हूं
पर, मुझे प्यार करने वाली
कोई प्रेमिका नहीं।
मैं माधव हूं
पर, कोई राधा
मेरे मिलन के लिये

यमुना -तट पर नहीं आती
मैं अपनी राधा
स्वयं आप हूं।

× × ×

मैं महिपाल हूं
अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा
आज भी
मुझे तड़पा रही है
पर, कोई सोहनी
कच्चे कलश के सहारे
तैर कर
मेरे पास आने को
तत्पर नहीं होती
मैं अपनी सोहनी
स्वयं आप हूं।

इसी तरह उन्होंने मानव जीवन के प्रत्येक पहलु को देखा है और उसका विवेचन कर अपने हृदय के उद्गारों से रंजित कर दिया है। जहां तक उन्होंने अपने व्यवसाय वकालत को भी अपनी ही दृष्टि से देखा, उसका चयन किया और उसे अध्यात्मवाद का रूप दिया।

मैं वकील हूं
कानून प्रयुक्ति
मेरी प्रवृत्ति है,
विधिकोष से
मुक्ता-चयन
करता हूं,
और डुबकी लगा
कानून के सागर - तल से
मुक्त-चयन

करता हूं,
मेरे वादियों में
मानव भी हैं
दानव भी और
देव भी,
अपने श्रम-बदल में
मैंने इन सब की
चिंतायें मोल ली हैं,
परस्पर प्रतिद्वंद्विता में
एक दूसरे के विरुद्ध
मैंने बिना भेद
इनके बिगड़े भाग्य
संवारने का भार
अपने ऊपर लिया है—
मुक्ता चयन द्वारा

यह उद्‌गार उनके अपने व्यवसाय से सम्बन्धित हैं। उन्होंने गरल को अमृत, पाषाण को मणि-मुक्ता समझा और कलंक को पुण्य में बदलने का साहस भी किया है। वकील का पेशा क्या है? यह सभी जानते हैं कि वकील झूठे की भी वकालत करते हैं और सच्चे की भी। कई बार उन्हें झूठ कह कर फंसा लेते हैं और अन्त तक उनसे असत्य बातें भी कहलवाते हैं, इसी लिये सूरी साहब ने अपने वादियों में देव भी देखे हैं और दानव भी। वे उनमें मुक्ता-चयन करते हैं। वे उनके बिगड़े भाग्य को चमकाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। उनके झगड़े जागें या सोयें परन्तु वे स्वयं निर्लेप हैं। उनसे खेलते हुये भी अछूते रहते हैं। मैं वकील हूं, निर्लेप वकील।

उनकी प्रत्येक गीति उनके मन की स्वच्छता की द्योतक है। उनके सदाचार और उच्च विचारों से परिचित करवाती है परन्तु यह वकील की कविता उनके हृदय की स्वच्छता का निखार बतलाती है। उनका मन हिमालय की तरह उन्नत और उस पर

उनके प्रत्येक गीत में "सत्य" है और है "सुन्दरता"। उन्हें प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर दिखलाई पड़ा है। वे किसी के भी हृदय की कटुता को प्यार से देखते हैं। प्रत्येक अभिव्यक्ति में अपने हृदय के उदगारों की भावनाओं को मिलाना चाहते हैं

जब वे वातावरण को धूलि-धूसरित और कांटों से भरा देखते हैं तो वे उस धूल को हटाने के लिये और समस्त कांटों को उखाड़ने के लिये तत्पर दिखलाई पड़ते हैं और वही उन्हें भट कंटक-मुकुट दिखलाई पड़ने लगता है और फिर उन्हें वही ईसा मसीह भी जान पड़ने लगता है।

श्री सूरी को सब से अधिक आध्यात्मिक शक्ति ही प्रेरणा देती रही है। वे प्रभु का लावण्यमय रूप किसी गुप्त-नेत्र से देखते हैं और उसे अपने हृदय में समेट लेते हैं—

मैं तुम्हारे रूप का
अनन्त प्यासा हूं
सखे।
मैं युग युग से
अपने अन्तर में
किसी गुप्त नेत्र से
तुम्हारा लावण्यमय
रूप देखता हूं।

उन्होंने कितने ही गीतों में अपूर्व मस्ती का परिचय दिया है, जो बड़े बड़े सन्त महात्माओं में ही दृष्टिगोचर हुआ करती है। वे लिखते हैं—

मेरा अस्तित्व स्वयं
मदिरा का उद्योगालय है
जिसमें तैयार की मदिरा
मेरे रोम रोम से
प्रस्फुटित हो
बाहिर प्रवाहित होती है।

यह मस्ती केवल आध्यात्मिक व्यक्तियों की है जिन्होंने अपने आपको भगवान् के बिल्कुल निकट कर लिया है। वे निद्रा को भी परम सुखदायिणि कहते हैं और इसके अधीन हो परम सुख में विभोर हो उठते हैं। एक और गीत में वे लिखते हैं—

जब मैं तुम को
याद करती हूं
तो मेरी कल्पना के
रंग-मंच पर तुम
नाटक के नायक
के रूप में
आन उपस्थित होते हो—
विविध वेश-भूषाओं
नाना आकृतियों के साथ...

सूरी साहब के गद्यगीत हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। गद्यगीत किसी भी साहित्य का आवश्यक अंग समझा जाता है। इसका स्थान कविता से कम नहीं। गद्यगीत भी हृदय के उद्गार हैं जो केवल कविहृदय में प्रस्फुटित होते हैं। उन्होंने कई लेख लिखे हैं जो पत्र पत्रिकाओं में छपते रहे हैं परन्तु जीवन के अवसान में उन्होंने गीति-साहित्य का सृजन किया जिससे उनका नाम अमर हो गया। इस संकलन के बाद गीति साहित्य में उनका नाम उत्कृष्ट लेखकों में गिना जा सकेगा।

प्रत्येक गद्यगीत को उन्होंने प्रभु चिन्तन का आधार समझा है। उन पर गीता का बड़ा प्रभाव था और गीता के वे वास्तविक चिन्तक थे। गीता के अनुशीलन से उन्होंने आत्मा की शुद्धि मानी है। वे बातचीत में गीता का बड़ा वर्णन करते थे और वही बात उनके गीतों में भी झलकती है। वे कहा करते थे कि गीता अनुभूत पारमार्थिक तत्वों का बड़ा खजाना है, भण्डार है जिसका प्रत्येक श्लोक विचारपूर्वक मनन करने की वस्तु है। यह दिव्यमार्ग दिखलाने वाला परम धर्मग्रंथ है।

पड़े हिम की भान्ति स्वच्छ था। उन्हें कई बार भीषण परिस्थितियों ने घेर लिया परन्तु वे सत्य और आत्मिक बल के सहारे उनका सामना कर सके।

श्री सूरी के गद्यगीतों में मीरा की भक्ति है और सूर का सा आनन्द है। उनमें सत्य है, शिव है और है सौंदर्य। इन सब की अनुभूति बार बार होती है, प्रत्येक पद में, प्रत्येक शब्द में। वे प्रभु के दर्शनों के लिये किस प्रकार विह्वल हो उठते हैं, यह बात बार बार उल्लसित होती है। अधिकांश गीत इसी भाव पर आधारित हैं—

मैं किस प्रकार
तुम्हारे पास आ पाऊं
मेरे साजन
मेरा ठौर तो धरती-तल है
और तुम
अगम्य ऊंचाई पर
आकाश-दुर्ग
बना कर रहते हो—
पहुंचने के लिये
कोई सीढ़ी नहीं।

कितनी आध्यात्मिक कल्पना है। वह मीरा के पदों के अतिरिक्त अन्य कहीं कम ही मिलती है। प्रिय-मिलन वास्तव में प्रभु-मिलन है उनका। इसी में उनकी व्याकुलता है, इसी में विशिष्टता है। उनके पास प्रेम डोरी है जिस के सहारे वे भगवान् को पाना चाहते हैं।

उनके अधिकांश छन्दों में रहस्यवाद है और कइयों में छायावाद। कइयों में दोनों का अपूर्व समन्वय। कहीं वे महादेवी वर्मा की वाणी बोलते हैं तो कहीं वे कबीर की भक्ति में ओत-प्रोत होते दिखाई देते हैं। उनकी कविता में विरहिनी का प्रलाप है तो कहीं पतिव्रता की भक्ति-भावना।

कभी तो वे प्रिय से दूर दिखाई देते हैं तो कहीं उसके बिल्कुल निकट और एक ही छलांग में वे उसके हृदय में समा जाना चाहते हैं। कई गीतों में उन्होंने अपने आप को प्रभु के सामने नारी भी समझा है।

श्री सूरी ने ऐसे गद्य गीत भी लिखे हैं जिनसे उनके निजी जीवन और उनके निकटवर्ती वातावरण की प्रतिछाया चित्र की भान्ति दिखलाई पड़ती है। 'मेरे घर का प्रिय संगीत' इस प्रकार की कविताओं का विशिष्ट उदाहरण है।

इस गीत में सम्भवतः उन्होंने अपने ही घर की तस्वीर चित्रित की है और यह उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा में रंगी है। उन्हों ने एक वकील के नाते कई खूनी अभियुक्तों को फांसी का दण्ड मिलते देखा होगा और उनके हृदय पर जो गुज़रती होगी उसका भी भली प्रकार मनन किया होगा—

... ...
नर-वध के अपराध में
मुझे हत्यारा
घोषित किया है और
मेरे लिये
गल-फंद द्वारा मृत्यु दण्ड का
आदेश दिया है
● ●
आखिर मैंने स्वयं तो
यह कार्य स्वेच्छा से
किया नहीं,
क्या मेरे इस कार्य के
पीछे कोई अप्रत्यक्ष
प्रेरणा नहीं थी ?...

उन्होंने विश्व की प्रत्येक उपलब्धि को बड़े सूक्ष्म भाव से देखा है और उसमें सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का रूप ही पाया है।

गीता की आध्यात्मिक भावना उनके गीतों में लक्षित होती है। वह प्रत्येक को ज्ञान की ऊंची सीढ़ी पर खड़ा कर देती है।

सूरी साहब अद्वैतवाद के अनुयायी थे। उन्होंने शङ्कर के सिद्धान्त को केवल पढ़ा ही नहीं था अपितु अपने जीवन में भी ढालने का प्रयत्न भी किया था। उसका प्रभाव उनके गद्यगीतों में भलि-भान्ति लक्षित होता है। उन्होंने अपने को ब्रह्म समझा और "अहं ब्रह्मास्मि" का अनुकरण किया। उन्होंने अपने मन में भगवान् की प्रतिछाया देखी है जो उनके प्रत्येक गीत में चित्र की भान्ति दिखलाई देती है।



स्व० श्री बन्सी लाल सूरी

●

प्रतिनिधि कवितायें

विलय और उद्भव !

जब मेरी कल्पना यथार्थ होती है
तो मेरे सपने साकार होते हैं !
किन्तु परिवर्तन की तीव्र धारा
इस आनन्दमयी स्थिति को
तुरंत छिन्न-भिन्न कर देती है
और कल्पना फिर कल्पना रह जाती है
और स्वप्न फिर स्वप्न !
कल्पना ! तुम वस्तुत: कल्पना हो।
तुम दोनों की जाति एक है, गोत्र एक !
भेद केवल जन्म का है
जागृति और सुषुप्ति का !
किन्तु तुम दोनों गौण एवं गुप्त लावण्य रखते हो
और तुम दोनों को अपना घूंघट-सौंदर्य प्रिय नहीं।
तुम दोनों यथार्थिकरण - द्वारा
अपने अपने रूप के प्रदर्शन के लिये तड़पते हो !
और अपने आप को इस परिवर्तन में विलय कर देना
चाहते हो !

किन्तु तुम्हें शायद मालूम नहीं
कि तुम्हारा यह प्रकट-रूप भी अपने उदभव और नग्न प्रदर्शन
से संतुष्ट नहीं
और यह भी पुन: अपनी भूतपूर्व
गौण अवस्था में विलय हो जाना चाहता है।
वस्तुत: तुम एक दूसरे के अंडकोष हो
और विलय और उदभव के इस खेल
को निरन्तर जारी रखना चाहते हो।
अमर रहे तुम्हारा यह विलय और
उदभव का खेल !

[२-७-१९६६]

प्राण-प्रलय

प्रियतम !
तुम मेरी मृत्यु हो ?
नहीं नहीं तुम मेरे प्राण हो !
सच, तुम मेरे प्राण हो ?
नहीं नहीं, तुम मेरी प्रलय हो !
नाश और जीवन की पृथक्ता का यह भ्रम
मुझे प्राय: तुम से दूर कर देता है।
किन्तु सहसा सम्भल कर
जब मेरी स्मृति तुम्हारे आलिंगन को
लालायित होती है
तो ऐसा भास होता है जैसे मुझे पीतरोग ने ग्रस लिया हो।
उस समय वियोग का यह आवरण एकदम उठ जाता है
और न केवल मैं अपने आप को तुम्हारे ही रूप में परिणत
पाता हूं
बल्कि दृष्टि की विशालता में मुझे एकदम
प्राण-प्रलय का आनन्दमय सम्मिश्रण ही दीख पड़ता है।
और लगता है कि कृष्ण और गौर वरणों के इस सम्मिश्रण ने
तुम्हारे रूप को सांवला कर दिया है
और इस में भर दिया है
मेरे प्राण - प्रलय का अनन्य लावण्य !

[३-७-१९६६]

विचित्र प्रतिद्वंद्वी

मैं अपने पिया की
प्रिया हूं,
अपने साजन की
एकमात्र सजनी !
अतः मैं
निश्चिन्त हो कर
आराम से
अपनी सुडौल भुजा पर
शीश टिका कर
सोती हूं।
पर,
मेरे कंत की अनुपस्थिति
और मेरे विश्राम से
अवसर चुरा
मेरा लावण्य स्वयं
अपने आप पर ही
अनुरक्त हो,
मेरी निद्रा की छाया में
कल्लोलरत हो जाता है।

इस कल्लोल क्रिया में
मेरा सुकुमार कपोल
मेरी कोमल भुजा को
अपने आलिंगन-फंद में
ले लेता है
और मेरी भुजा भी
समय - उपलब्धि से

मेरे कपोल पर अपना
चुम्बन जमाने से
नहीं चूकती और
यह दोनों अपने
आलिंगन - चुम्बन के
चिन्ह एक दूसरे पर
अंकित कर देते हैं।

इन क्रियाओं में
मानो पूर्व षड़यंत्रवश,
अगड़ाइयों से बिखरे,
मेरे घुंघराले बाल भी
योगदान देते हैं और
वह इन रोमान - क्रीड़ाओं के
प्रहरी बन जाते हैं।
यद्यपि,
इन कल्लोल - क्रियाओं का
समूचा आनंद
मेरे सौंदर्य,
मेरी गाल और
मेरी बांह को नहीं—
स्वयं मुझे मिलता है।
मेरे पिया भी
इन क्रीड़ाओं से
मुझ पर अनुराग-घात का
अभियोग नहीं लगाते,
न मुझ पर क्षुब्ध होते हैं;
वह मेरी सुन्दरता को
अपना द्वंद्वी नहीं समझते
बल्कि उसको और भी
घनिष्टता से अपना

लेते हैं और उसकी
प्यार - क्रीड़ाओं से
गौरवान्वित हो उठते हैं
जिस से मैं उनकी
और भी अधिक,
अत्यधिक, आकर्षण - पात्री
हो जाती हूं—
मेरा लावण्य
मेरे साजन का
विचित्र प्रतिद्वंद्वी है !

[२६-७-१९६६]

गायिका

मैं गायिका हूं ।
मैं भगवद् भजन करती हूं
और गीत - गज़लोच्चारण भी ।
किन्तु न तो मैं ईश्वर - भक्त हूं
और न ही प्रेमिका !
काव्योद्गार मेरे सम्मुख कोई
मर्म नहीं रखते ।
प्राय: अपने चंचल संकेतों
और अंग क्रियाओं द्वारा
मैं अपने प्रशंसकों की भावनाओं
को नचाकर
इन उद्गारों का मानो उपहास करती हूँ
मुझे तो अपने संगीत की पुष्टि
के लिये केवल शब्दों का सहारा
चाहिये
क्योंकि मैं गायिका हूँ ..
केवल गायिका !

किन्तु जब मैं संगीत को अपनी
स्वर - तरंगों पर उठा कर
आकाश - विचरित करती हूं
तो अनेक आत्मायें स्वत:
उड़ कर अनगिन कैलाशों,
कंचनजंघाओं और मानसरोवरों
की सैर करने लगती हैं
और जब मेरा संगीत अंतरिक्ष

की अनंत व्यापकताओं में विलीन होने लगता है
तो समस्त ब्रह्माण्ड काव्योद्गारों से
सुरभित हो उठता है
और इस ब्रह्माण्ड - सम्पर्क से अनेकों
हृदय मानो विद्युतन्वित हो जाते हैं
और काव्योद्गारों से एकरस होकर
स्वयं कविता स्वरूप हो जाते हैं
और भक्ति अथवा प्रणय से विह्वल हो उठते हैं
पर मैं स्वयं गायिका हूँ !
मैं फिर भी इस रोमांच से
वञ्चित, अनभिज्ञ एवं निरपेक्ष रहती हूं
क्योंकि मैं केवल गायिका हूँ !

मेरा संगीत जीवन है ।
क्योंकि इस का सम्पर्क ब्रह्माण्ड से है
जिस प्रकार प्राणियों के निःछ्वास
ब्रह्म सम्पर्क द्वारा जीवन - ग्रहण करते हैं
उसी प्रकार मेरा संगीत
भी ब्रह्मविलीन हो कर
उनमें जीवन संचार करता है
किन्तु मैं स्वयं निःछ्वासों द्वारा ही जीवन पाती हूँ
संगीत द्वारा नहीं,
क्योंकि मैं गायिका हूं केवल गायिका
मैं गायिका हूं ।
मेरा संगीत साज़ मांगता है
सहसा इसे मानव - हृदय में
अपना साज़ मिल जाता है।
जो इससे प्रभावित हो कर स्वयं बज उठता है ।

[१३-८-१९६६]

बंदी उद्गार !

मैं साहित्यकार हूँ ।
मैं भी अपने उद्गारों को
भावनाओं की
विश्व-अभिव्यक्तियों में
मिलाना चाहता हूँ ।
मेरे हृदय से भी कविता उभरती है
भावोद्सृजन होता है
और
उद्गार उबलते हैं ।
प्रेरणा मुझे भी लिखने के लिये संकेत करती है
पर, दुर्भाग्यवश
मेरा अवतरण एक अप्रजातंत्रीय देश में हुआ है—
जहां शासन ने मेरी आतमा को पूर्णरूप से बंदी बना रखा है ।
जहां मेरे उद्गार बंदी हैं
मेरी भावुकता बंदी है
और जहां पूर्ण प्रतिबंध है मेरी प्रेरणा की परिपूर्ति पर ।
जहां कविता उभर कर मेरे हृदय में ही लुप्त हो जाती है ।
जहां उद्गार उबल कर
मेरे अन्तस्तल में ही बुदबुदा कर लीन हो जाते हैं
जहां भावुकता उठते ही मिट जाती हैं
और जहां प्रेरणा को स्रोत नहीं मिलता और
वह मेरी अन्तरातमा में ही शुष्क हो जाती है
अपनी मातृभूमि में शासनादेश की
प्रेरित रेखा के प्रतिकूल
मैं कुछ भी लिख पाने को स्वतंत्र नहीं ।
भावनाओं को बंदी करने के लिये शासन ने मेरे हृदय को ही

बंदी गृह बनाया है
और यदि मैं स्व-प्रेरणा से किसी 'डॉक्टर जिह्वागो"
की रचना करता हूँ
और उसके उपलक्ष्य में 'नोबुल पुरस्कार' पाता हूँ
तो शासन का सकल रोष-वज्र मुझ पर आ गिरता है
और मैं नागरिकता से भी वञ्चित कर दिया जाता हूं
मेरी प्रतिभा मुझसे छीन ली जाती है और
मुझे बाध्य किया जाता है कि
मैं स्वयं अपनी अश्लाघाओं
द्वारा अपने आप को निंदित करूं
अन्तरात्मा की इस यातना के फलस्वरूप
मैं घुल - घुल कर मर जाता हूं।
मेरे इस जीवनान्त पर स्वतंत्र-संसार
आंसू बहाता है
पर मैं स्वयं अपने अंत का स्वागत करता हूँ
जब कि मेरा यह बंदी आत्मांश
अनन्तात्मा के साथ जा मिलता है
और उसके साथ मेरे भावोद्गार भी
मुक्त होकर अपनी वांछित व्यापकता प्राप्त कर लेते हैं।

[८-१-१९६७]

यातना - साम्राज्य

अरे,
किस पागल ने यह चित्र धूल में फेंक दिया है ?
धूलावरण से इस चित्र की छटा लुप्त हो गई है
केवल इसका कुछ अंश ही बच रहा है
जहां कांटों का समूहमात्र ही दृष्टिगोचर होता है।
ज़रा इस धूल को हटाओ तो !
आह ! यह तो एक कंटक-मुकुट दीख पड़ता है
जो मानव मस्तिष्क पर शोभायमान होकर
छटा-प्रसारण कर रहा है।
यह किस दैदीप्यमान और महान मूर्ति का
आभाशील ललाट है ?
अरे, यह तो प्रभु ईसामसीह हैं !
किन्तु, इनके सिर पर यह कांटों का ताज क्यों ?
यह ताज इनकी किस बादशाहत का प्रतीक है
कौन हैं वह लोग जो इनके साम्राज्य की प्रजा हैं
जिन के लिये क्राइस्ट का दिमाग रक्त-प्रवाहित होता है ?
इस चित्र की पृष्ठ - भूमि में मुझे तो केवल
वेदनापूर्ण, यातना - पीड़ित, दीन, दुखी, रोग - ग्रस्त,
अंगहीन, अनाथ और निस्सहाय शिशु, युवा
और वृद्ध ही नज़र आते हैं !
जिस - जिस पर भी
इस कंटकधारी का कर-स्पर्श होता है
उसका दर्द काफ़ूर होता जाता है
पर, स्वयं इस मुकुटधारी सम्राट की मनोयातना का
कभी अंत नहीं होता।
दमभर के लिये भी उसका यह खारदार ताज उसके सिर से
नहीं उतरता।

उसका मस्तिष्क सदा-सदा के लिये दूसरों के दर्द से तड़पता
ही रहता है।

उसे इतना अवसर भी प्राप्त नहीं होता
कि जो भाग्यशाली उसके हाथ के स्पर्श से
दुःख-मुक्त होते हैं, उनसे सांत्वना-प्राप्ति के सुख का
रसास्वादन भी तो कर सके !
इस बादशाह का साम्राज्य—यातना-साम्राज्य है,
इसका अपना सुख वेदना-सुख है
और इसका ऐश्वर्य बलिदान-ऐश्वर्य है
यहां तक कि इसके प्रार्थी जीवन का अन्तिम पुरस्कार
क्रास-सिंहासन है

और इसके साम्राज्य की सीमा
किसी प्रदेश-विशेष तक ही सीमित नहीं ;
इसकी बादशाहत की सुख-उपलब्धि
समस्त विश्व-प्राणियों के लिए है
और यह सम्राट अपने युग का
कृष्ण है, मुहम्मद है, बुद्ध है, महावीर है, नानक है, गांधी है
जिनके उज्ज्वल भालों पर नहीं तो
हृदयों पर कंटक-मुकुट अविरल रूप से विद्यमान रहते हैं
और जिनके हृदय-क्षेत्र की प्रभु-सत्ता
कोटिशः जीवात्माओं की यातना- निवृत्ति का
स्वास्थ्य-मंदिर है।

१३-१-१९६७

सजावट

तुम मेरी प्रेयसी हो
प्रिये,
ग्रौर मैं प्रेमिक
तुम्हारा नारीत्व
ग्रौर मेरा पौरुष
विश्व के ग्रंश ग्रंश के लिए
ग्रमृत है।
ग्रौर इनके सम्मिश्रण के दूसरे नाम हैं,
दुर्गा, शिव, परमानंद।
ग्रतः तुम
मेरे जीवन का ग्रखंड
ग्राकर्षण हो।
मेरा पुरुषत्व
तुम्हें पाने के लिये
निरंतर प्रयत्नशील रहता है
तुम्हें पाने के लिये
मैं विविध प्यार-संकेत
करता हूं
धन-सम्पदा लुटाता हूं
नाना छल, बल-प्रयोग
ग्रौर ग्रपराध करता हूं।
मैं राम बनता हूं
तो प्रथम दृष्टि में ही,
फुलवारी में,
तुम्हारे लावण्य पर

मुग्ध हो
स्वयंबर में
शिव-धनुष तोड़ कर
अपने आप को
तुम्हारी जय-माला का
अधिकारी बनाता हूं।
मैं अर्जुन बनता हूं
तो अशांत जल में
चक्र खाती हुई
मीण की परछाई
को देख कर
उलटे शर-लक्ष्य से
मीणाक्षी-वेध करके
तुम्हें पुरस्कार में पाता हूं।
पृथ्वीराज चौहान
बनने पर
अपने खड्ग - शौर्य से,
सशक्त शत्रु - दल के मध्य से,
हरण कर, तुम्हें तीव्र वेग से
घोड़े पर बिठा कर
उड़ा लाता हूं।
तुम्हें पाने के
मेरे यह प्रयास
मेरी मानव - जीवनी तक ही
सीमित नहीं हैं, प्रिये,
तुम्हारे लिये मेरा
यह अन्वेषण
पशु - संसार, कीट - संसार
और वनस्पति - संसार में भी
प्रचलित है।
तुम्हारे अभाव से

लगता है
कि मेरा अस्तित्व
नितांत अपूर्ण है
किन्तु तुम्हें पा लेने पर
मुझे लगता है
कि मेरे जीवन में
परिपूर्णता आ गई है ।
तुम मेरी
रमा, सीता, गौरी और
राधिका हो जाती हो, प्रिये,
और मैं
रमापति, सीतापति,
गौरी - देव और
राधिका - वल्लभ ।
तुम्हारे मिलन से
मेरा अस्तित्व शोभायमान
हो उठता है,
मेरे जीवन में सजावट
आ जाती है ।
फिर,
जब तुम
अनुपम वेश - भूषा
और नाना शृङ्गारों से
अलंकृत होकर,
अपने रूप - लावण्य में
गर्वान्वित,
मटक - गति से
मेरे संग
चल - चित्र, मनोरंजन, देव - दर्शन या प्रयटन के लिये
निकलती हो
तो लगता है

कि स्वयं मूर्तिमान लावण्य मेरे साथ
चल रहा हो
और उसकी छटा मुझे भी सौंदर्यवान कर रही हो
और ब्रह्मांड का सकल माधुर्य
मेरे व्यक्तित्व में
आ समाया है, प्रिये,
और मेरा अस्तित्व
स्वयं तुम्हारी इस प्रतिभा से
गर्व - कोष बन गया है।
और मैं अपने आप में
आनंदविभोर होकर फूला
नहीं समाता हूँ।
और जब मैं तुम्हें संग बिठा कर
अपने स्कूटर को तूफान - वेग से चलाता हूं
तो तुम्हारे विविध - रंजित वस्त्र उड़कर,
हम दोनों को तितली-रूप करके
समग्र अंतरिक्ष को रंगीन
बना देते हैं।
तुम मेरी अपनी सजावट हो, प्रिये,
मेरे घर की सजावट, मेरे बाहर की सजावट
और जब मैं बाज़ार में
दुकान पर कुछ खरीदने जाता हूं,
तो पीछे पथ पर खडी
मेरी मोटर कार की भी सजावट !
इस प्रकार हमारा आकर्षण एक दूसरे की ओर
समान आकर्षण है और हमारा मिलन और दाम्पत्य
समान रूप से विश्व की सजावट;
वस्तुतः, स्वयं विश्व
के अस्तित्व की जमानत, प्रिये !

[१६-४-१९६७]

डॉक्टर

मैं डॉक्टर हूँ, प्रियतमे,
और तुम महिला डॉक्टर ।
हम दोनों अस्पताल के
मातृ - विभाग के
विशेषज्ञ, चिकित्सक हैं
और मानव शरीर - रचना - विज्ञान
के निपुण - ज्ञाता हैं ।
मैं तुम्हारे कलेवर के
अंग तत्वों से परिचित हूं
और तुम मेरी शरीर रचना की
तत्वज्ञा हो ।
इस विज्ञान - विशारदता
के अनुसार
हम दोनों हाड़, मांस, रक्त और
मज्जा की
जीती जागती केवल मूर्तियां हैं ।
हम जानते हैं कि
हमारे यौवन और सौंदर्य का
तेज और निस्तेज
हमारे आन्तरिक अंग - स्वास्थ्य
की क्षीणता और प्रबलता के
अनुसार
घटता बढ़ता रहता है
हम यह भी समझते हैं कि
केवल अपनी प्रसूति के लिये
हमारे आन्तरिक मल को आवृत कर
प्रकृति ने हमारे

हंसी ठिठोली करते देखता हूं
और इन बरातों में
कुछ एक को
अश्रु बहाते
भी देखता हूँ।
इन ही द्वारों से मैं
एक साथ
राज्याभिषेकों और जन-विद्रोहों
के दृष्यों को यत्र-तत्र इकट्ठे ही अनुभूत करता हूं,
महासमरों और शान्ति सन्धियों को
एकदम सम्पन्न होते पाता हूँ।
मैं शिव, विष्णु और ब्रह्मा
के ताण्डव को
एक-साथ देखता हूँ

न जाने
मेरे इस मकान की
अनुपमता पर मुग्ध हो कर ही
मेरी सजनी
क्यों, मेरे भ्रम में,
स्वतः इसकी ओर
आकृष्ट हुई जाती है?
शायद
वह मेरे
अस्तित्व और निवासस्थान में
कोई भेद
देख नहीं पाती।
शायद
वह नहीं जानती
कि इस घर से
मेरा कोई लगाव नहीं है,
और कि

इस मकान की
न ही कोई नींव है
और न ही स्थिरता,
और कि
यह किसी क्षण भी
धराशायी हो सकता है
मेरा वल्लभा
स्वयं
मुझसे अपरिचित है
वह नहीं जानती
कि गृह-हीन हो कर
मैं स्वयं
कहां कहां
आवारा हो भटक जाता हूं
वह सर्वथा अनभिज्ञ है
कि आवारगी
मेरा स्वभाव है !
पहले मैं अपने कारावास के इन
छिद्रों से केवल प्रस्तुत चरित्र ही
देख पाता था
अब स्वतत्र होकर मैं एकदम अतीत
वर्तमान और भविष्य के
विश्व नाटकों का
मनोरंजन भी कर सकता हूं !

[३०-५-१९६७]

सहस्रमुखी

मैं एक साधारण नारी हूं
मत करो
मुझे बदनाम
कि हर समय मैं
प्रणय-मदिरा ही
पिये रहती हूं।
मेरा अनुराग
ब्रह्मा और दत्तात्रेय की
भांति त्रिमूर्ति है
कार्तिकेय की तरह
षट्दर्शी
शेष की नाईं
सहस्रमुखी है।
मैं एक साधारण
नारी हूं
मैं अपनी बहुवदनी
प्यार - भावनाओं को
अपने अन्दर
गौण रखती हूँ
और
यथा समय प्रत्येक का
अभिनय करती हूं
मैं सजनी हूँ
अपने साजन को
अपने प्यार से
रिझाती हूँ,

मैं सखी हूं,
मेरे हृदय में अपनी
सहेलियों के प्रति
सख्य - प्रियता भी है
मैं गृहिणी हूँ
मैं मातृ - स्नेह रखती हूं
और अपने परिवार पर
उपयुक्त वात्सल्य भी
बरसाती हूं
मैं बहन हूँ
अपनी सहोदरों पर
भगिनी-प्रेम भी दर्शाती हूं,
मैं मालकिन हूं
अपने अनुचरों पर
अनुकम्पा भी
न्योछावर करती हूं
मुझे घर के पशुधन
और पालतू
श्वानों और बिल्लियों से
भी प्यार है
मुझे अपना घर प्रिय है
मुझे अपने समाज से अनुराग है
स्वदेश पर तो
मैं अपनी जान भी
लुटाती हूं
मुझे विश्व के
कण - कण से प्यार है—
मैं एक साधारण
नारी हूं

[१८-६-१९६७]

इस प्रकट यौवन और लावण्य का
भ्रामक छल रचाया है।
फिर भी
न जाने क्यों
हमें यह छल प्रिय है, सजनी,
और क्यों हम
एक दूसरे की ओर अनजाने
आकृष्ट हुए जाते हैं?
हमारे मुखड़ों की
रोचक कृति,
उनके रंग, रूप और सुन्दरता
हमें एक दूसरे के प्रति
मुग्ध कर लेते हैं, प्रिये,
और हम शरीर के
आन्तरिक मलपूर्ण आकार को
सर्वथा भूल जाते हैं।
"हमारे कलेवरों के किस भाग में
कौन सा विजातीय द्रव्य,
———चुम्बक———
प्रविष्ट है"———
यह तो हम ने किसी शास्त्र में
नहीं पढ़ा!
जब तुम लज्जाशील मुस्कान से
मुझ से सम्बोधित होती हो
तो मेरा रोम रोम गद्-गद्
हो उठता है।
जब तुम सरल-स्वभाव से
इसी मुस्कान से
किसी अपरिचित व्यक्ति से
बात करती हो
तो मैं अकारण ही

संदेह-ग्रस्त हो कर
ईर्ष्याग्नि से जल उठता हूं
और जब कभी तुम
केवल स्वमनोरंजनार्थ
मुझे खिजाने के लिये
रुष्ट अथवा क्रुद्ध
आकृति बना लेती हो
तो मेरे आह्लाद पर तत्क्षण
ओस पड़ जाती है
इस तात्विक शरीर - निर्माण में
यह आकर्षण, यह लाज, यह हर्ष,
यह ईर्ष्या, यह रोष,
यह क्रोध और यह संदेह
कहां से उत्पन्न हो जाते हैं,
इसका तो हमने किसी
विज्ञान - ग्रंथ में
अध्ययन नहीं किया, प्रेयसी !
हम केवल अनुमान
लगा सकते हैं, प्रिये,
कि हमारे इस जीवन का
स्वास्थ्य, गतिविधि, ज्योति
और चेतन
ब्राह्मांडिक तत्वों के प्रति
हमारे शरीर के रचना-तत्वों की
क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं
का फल हैं।
एक निर्जीव शव में
इन क्रियाओं और
प्रतिक्रियाओं की सामर्थ्य कहां ?
पर, देवी,
"हमारे इस
पारस्परिक

अनुराग, प्यार, भावुकता,
उल्लास और
सौंदर्य-प्रियता का
हमारी देहों में
उपज-स्थान कहां हैं ?"—
हम दोनों विशेषज्ञ
इससे अनभिज्ञ हैं !
पर, शरीर-तत्व सूत्र से
असम्बन्धित होते हुए भी
इनका देह-सामंजस्य
इस तथ्य का प्रतीक है
कि यह
किसी अनानुभूत
संगीतकार का मधुर संगीत हैं,
किसी आवरणित शारदा की
वीणा के स्वर हैं,
किसी अव्यक्त माली के
व्यापक पुष्प वन की मस्ती भरी
सुगंधि हैं
या किसी वन-प्रच्छन्न
माधव की बांसुरी की
मादक तान !

[२१-५-१९६७]

किराये का मकान

मेरा यह घर
एक किराये का मकान है
इस मकान को मैंने
अपने अदृष्य हाथों से
स्वयं तैयार किया है,
पर, फिर भी
यह मकान मेरा अपना नहीं,
इसके किवाड़ हैं, खिड़कियां हैं
और असंख्य रोशनदान हैं;
और इसमें
बिना तार और बिना बल्ब
बिजली के प्रकाश की व्यवस्था है।

इस मकान को
मैं सजाता हूं, संवारता हूं,
इस की यथासमय
मुरम्मत भी करता हूँ
और प्रायः
इसके किवाड़ों, खिड़कियों
और रोशनदानों से
बाहिर
बरातों और अंत्येष्ठी शव-यात्राओं को
एक साथ
चलते देखता हूँ,
इन शोक-यात्राओं में
मैं अधिकतर सहचरों को

उन्माद

मैं तुम्हारे प्रेमोन्माद में
खो चुकी हूं,
प्रियतम
मेरे पागलपन में
केवल
एक तुम्हारा नाम ही
मेरे मस्तिष्क में
अटक कर रह गया है।

× × ×

श्वास लेते,
खाते, पीते,
चलते, फिरते,
प्रतिक्षण,
विसुधि में,
ग्रामोफोन के
विकृत
रिकार्ड के अनुसार
मेरे मुंह से
तुम्हारा ही नाम
बार बार
निकलता है।

× × ×

मैं सांस लेती हूँ
तो
तुम्हारे नाम से

मिल घुलकर
मेरा प्रत्येक श्वास
मेरी नस-नस में
तुम्हारी ही पावनता
का संचार करता है।

× × ×

मैं खाती हूँ
तो
मेरे खाने का
प्रत्येक ग्रास
तुम्हारे नाम से
ओत-प्रोत हो कर
मेरे अंग अंग को
तुम्हारी ही सबलता
प्रदान करता है।

× × ×

मैं पीती हूं
तो
मेरे पान का
प्रत्येक घूण्ट
तुम्हारे नाम से
सिंचित होकर
मेरे रोम रोम में
तुम्हारी ही
शीतलता भर देता है
और मैं चलती हूं
तो
तुम्हारा नाम
मेरे प्रत्येक पग की
लकुटी हो कर
तुम्हारी ओर बढ़ने की

मेरी चेष्टा को
सर्वथा सहज कर देता है।

× × ×

मैं तुम्हारे
प्रेमोन्माद में
खो चुकी हूँ,
प्रियतम !

[२३-७-१९६७]

यथार्थ नेत्र

कितनी ही बार
रात्रि के समय,
मेरे देव,
जब मुझे
तुम्हारे दरबार में
प्रस्तुत होने में
देर हो जाती है
तो तुम्हारा पुजारी,
मेरे खड़े खड़े ही
मन्दिर के किवाड़
बन्द कर देता है
किन्तु, फिर भी,
मन्दिर के यह किवाड़
मेरे और तुम्हारे मध्य
रोक नहीं बन पाते ।

मेरे
यह सूक्ष्म परञ्च तीक्ष्ण
गृध्र-नेत्र
तुमको
द्वार-पटों के बीच से भी,
अविरल,
प्रत्यक्ष देखते हैं

मित्र लोग
मुझ पर हंसते हैं
कि मैं तो

अपने प्रेम-पात्र को
जड़-पटों से भी
देख लेता हूँ;
क्या मेरे जड़ देव भी
मुझ पर
दृष्टिपात
कर पाते हैं ?

मेरे यह भोले सखा
क्या जानें
कि
मूर्ति के
यह जड़-चक्षु ही
मेरी ओर निहारने के
मेरे आराध्य देव के
यथार्थ नेत्र हैं।

[२६-७-१९६७]

अपना प्रेमिक आप

मैं स्वयं
प्यार - पुंज प्रेमिक हूं,
पर, मुझे प्यार करने वाली
कोई प्रेमिका नहीं।

× × ×

मैं माधव हूं
मेरी मौन बांसुरी
आज भी
ब्रज में गूंजती है
पर, कोई राधा
मुझ से मिलने के लिए
यमुना - तट पर नहीं आती—
मैं अपनी राधिका
स्वयं आप हूँ।

× × ×

मैं महिवाल हूं,
अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा
आज भी
मुझे तड़पा रही है,
पर, कोई सोहनी,
कच्चे कलश के सहारे
तैर कर
मेरे पास आने को
तत्पर नहीं होती—
मैं अपनी सोहनी
स्वयं आप हूँ।

मैं फरहाद कोहकन हूं,
मैंने प्रेम - विरह से
मुक्ति पाने के लिये
आत्महनन किया,
पर, कोई शीरीं
मेरे मजार पर
प्रेम - प्रसून चढ़ाने के लिए
प्रस्तुत नहीं होती—
मैं अपनी शीरीं
स्वयं आप हूँ।

× × ×

मैं मजनूं हूँ,
अपनी प्रेयसी के प्यार ने
आज भी मुझे सुखा कर
कांटा बना रखा है,
पर, कोई लैला
मेरे प्रेम में
अपना प्रेम मिलाने के लिये
जन्म नहीं लेती—
मैं अपनी लैला
स्वयं आप हूँ।

× × ×

मैं प्यार - पुंज प्रेमिक हूं,
मैं स्वयं अपने आपको प्यार करता हूँ,
क्योंकि मैं जानता हूं
कि मेरी कोई प्रेमिका
मुझ से पृथक नहीं,
इसीलिए
मैं अपना प्रेमिक
आप हूं।

[५-८-१९६७]

घेराव

यह कौन
जन - समूह है
राधे,
जिसने आज
मेरे जन्म - पर्व पर
इस अर्धरात्रि के समय
हमारे भवन को
घेराव में ले रखा है ?
क्या यह
हमारे अतीत प्रेम को
अनैतिक जान
उसके विरोध में
प्रतिवाद व्यक्त करने
आया है ?
नहीं, नहीं,
यह तो
हमारे इस प्यार पर
श्रद्धा - पुष्प बरसा रहा है !
यह जानता है कि
प्रेम को मर्यादा, उपचार की
सीमाएं
सर्वथा मान्य नहीं,

× × ×

यह कैसा विचित्र
घेराव है, राधे,
जिस में रोष का

लेशमात्र भी नहीं
और जिससे हमें
तनिक भी
भय नहीं लगता;
बल्कि इसको देख कर
हम आनन्द-मुग्ध
हुए जाते हैं,
मुझे तो प्रतीत
होता है
मानो
हमें देख कर
इसके असंख्य वदनों पर भी
आनंद और आह्लाद का
सागर उमड़ आया है।

× × ×

आखिर
यह महान समुदाय
हमसे
क्या चाहता है ?
वह कौन सी मांग है
जिसने इसे हमें
घेराव-बंदी बनाने पर
विवश किया है ?
मुझे तो इनकी
कोई सांझी मनोकामना
दृष्टिगोचर नहीं होती !
मैं इस भीड़ के
प्रत्येक व्यक्ति के मन को
टटोलता हूं
मुझे तो

प्रत्येक हृदय में
अलग - अलग
अर्चना - विशेष ही
नज़र आती है !

× × ×

आज मेरा
अवतरणोत्सव है,
राधे ;
आज मेरा हृदय भी
असीम है,
व्यापक है,
विशाल है,
मेरा अपना अनुराग
इस जमघट पर
टूट पड़ा है,
और अनिच्छित ही मेरा
वाञ्छित फल - प्रसाद
स्वत: प्रत्येक याचक को
सुलभ हो रहा है

× × ×

आज मेरा
जन्म - पर्व है
राधे !

[२-६-१६६७]

पतझड़ में बहार

मत इतराओ,
वसंत
कि तुम स्वयं - कथित
ऋतु -सम्राट हो
कुछ रंग -बिरंगे प्रसून,
हरे - हरे पल्लव
और हिम - पट
शिरोधार्य करके
तुम अपने आप में
मुकुटधारी राजाधिराज
बने बैठे हो
इस गणतंत्र और समता के
युग में
राज्याधीशों का क्या मान ?
अपना स्वागत
और सम्मान करवाने
के लिये तुम्हें
राजशाही के वेश को
उतार
अपने मिथ्याभिमान के
उच्चासन से उतर कर
ऋतु - समुदाय की
बिरादरी में
अपना समान स्थान
लेना होगा वसंत !

× × ×

मत इतराओ
वसंत,
कि तुम स्वयं - कथित
ऋतु - सम्राट हो।
आखिर,
तुम्हारा यह राज्यादेश
किस प्रजा पर
चलता है ?
बीते हुए
या आगामी ऋतु - समूह पर ?
प्रकट है कि
बिरादरी के बिना
अपने नृपाभिमान में
तुम अकेले हो,
और तुम्हारी यह दशा
करुणापूर्ण है ;
क्योंकि
अपने काल में
प्रत्येक ऋतु का
अपना प्रभुत्व है
अपना महत्व है और
है अपना कर्त्तव्य
जो ब्रह्मांड - हित में
अनिवार्य है,
पर फिर भी
किसी ऋतु - विशेष में
ऋतु - राज होने का गर्व——
गर्व नहीं होता, वसंत !

× × ×

मत इतराओ,
वसंत
कि तुम स्वयं - कथित

ऋतु - सम्राट हो
मेरे निकट तो
पतझड़ ही बहार था,
शरद, ग्रीष्म और
वर्षा - ऋतु ही वसंत थे
जब मेरे प्रियतम
मेरे पास थे।
तुम्हारा आगमन तो
मेरे लिये वियोगाग्नि की
जलन अपने साथ
लेकर आया,
मेरे साजन को
अनिश्चित काल के लिये
विदेश जाना पड़ा,
मुझे
तुम्हारे मुकुट के यह फूल
शूल होकर चुभते हैं
तुम्हारे इन हरे हरे पत्तों में
मुझे वह रुचि और प्रियता प्रतीत नहीं होती
जो पतझड़ के
सूखे पल्लवहीन वृक्ष - ठूंठों में
प्रतीत होती थी
और तुम्हारे इस हिमपट की अपेक्षा
ग्रीष्म के नंगे, काले, पर्वत मेरी दृष्टि में
अधिक सुंदर थे,
मेरे हृदय के दावानल को
शान्त करने के लिये
तुम भी शरद, ग्रीष्म, वर्षा और पतझड़ ऋतु
हो जाओ, वसंत ?

[१-२-१९६८]

बिना पिये शराबी

मैं मद्यप नहीं
पर, मैं प्राय:
मद्यमद - ग्रस्त रहता हूं ।
वस्तुतः
मेरा अस्तित्व स्वयं
मदिरा का उद्योगालय है
जिसमें तैयार हुई मदिरा
मेरे रोम रोम से
प्रस्फुटित हो
बाहर प्रवाहित होती है ।
मेरे इस मदिरालय में
खट्टी, मीठी, कड़वी
हर प्रकार की
रंग - बिरंगी
मदिरा की उपज
होती है——
उन्माद - मदिरा
हर्ष - मदिरा,
विषाद - मदिरा,
मिलन - मदिरा,
वियोग - मदिरा और
प्यार - मदिरा आदि
अनगिनत लेबलों से
इस उद्योगालय के
माल का उत्पादन

होता है।

यह मदिराएं,
समयानुसार
बिना पिये ही
मुझे मदमस्त किये
रहती हैं
और मैं
बिना पिये ही
हर प्रकार की
निकृष्ट, उत्कृष्ट
मदिरा का
रसपान किये रहता हूं।
मैं स्वभावतः
बिना पिये ही
शराबी बना रहता हूं।

[१६-५-१९६८]

रूप का चित्र - पट

धर्मक्षेत्र कुरूक्षेत्र में
महाभारत - समर के मध्य,
हे मित्र,
मैंने तुम्हें
अपना यथार्थ रूप
सम्पूर्ण विराट रूप, दिखाया था
और तुमने मेरे
इस रूप -पट पर
असंख्य चलचित्रों का
अवलोकन किया था
अनगिनत उछलते हुए सागर,
स्वच्छ जल - प्रवाहित करते निर्झर
रमणीय गगनचुम्बी
विशाल पर्वतीय हिमसमूह
कंचनजंगा और कैलाश और हिमालय,
झिलमिलाते अनेकों चांद, सूर्य
और ग्रह - उपग्रह
वियोगी एवं स्नेही हृदयों के स्पंदन, मिलन,
आलिंगन और चुम्बन और
कितने ही कश्मीर और स्विट्ज़रलैंड
तुमने मेरे कलेवर में
गतिशील देखे थे ।

तुमने देखा कि
मेरा अंग अंग——

दिव्य वदन, ओष्ठ, कपोल, उदर,
वक्ष——प्रत्येक, किसी - न - किसी
देवी - देव द्वारा जटित हो
जगमगा रहा है,
और मैंने स्वयं भास किया कि
तुम्हारी कल्पना ने मेरे रूप
के साथ एक हो कर
तुम्हें मुझमें इतना
मुग्ध - लीन कर दिया है कि
तुम्हारा अपना कलेवर
सम्पूर्ण विराट रूप होकर सकल
देवी - देवों की उदात्त
ज्योति से उदीयमान
हो उठा है
और कि मेरा यह स्वरूप
तुम्हारे ही जीवन की
प्रतिछाया मात्र हो गया है,
तुम प्रत्यक्ष देखते हो कि
तुम्हारे अपने जीवन के
पूर्ण - अपूर्ण भावों - अभावों
के एक साथ
मेरे विराट कलेवर से भी,
विद्युत वेग से,
निरंतर,
देवी - देवगण झड़ते और
पुण: जटित होते जले जा रहे हैं,
उदाहरणत:
जब तुम सम्पदाहीन होते हो
अथवा निरक्षर, कलाहीन या
ज्ञानहीन होते हो अथवा

संततिहीन होते हो तो
मेरे दिव्य शरीर से तत्क्षण,
क्रमशः,
लक्ष्मी -अंग का विच्छेद
हो जाता है,
सरस्वती अथवा ब्रह्मांगों का
पतन हो जाता है
यही क्रम
तुम्हारे जीवन की अन्य
दिशाओं और मेरे
सम्बंधित देवांग विशेषों
के विषय में भी अविरल सत्यतः
प्रचलित रहता है,
और तुम मेरे रूप के चित्र - पट पर
स्पष्ट देखते हो कि
जब जब तुम
कभी इन उपकृतियों से
सम्पन्न होते हो तो
मेरा कलेवर,
तुरन्त और तत्काल
सम्बंधित देवी - देवों द्वारा
अंग - जटित हो जाता है,
और मेरे रूप - पट पर
अंगों के जटाव - पतन का
यह क्रम निरंतर
इतनी तेज़ी के साथ
प्रवाहित रहता है कि
मेरा ज्वलंत रूप एक झिलमिलाती, मनमोहिनी
दीपावली का अस्खलित
दृश्य हो गया है।

[२०-६-१९६८]

वियोग भला या मिलन ?

तुम्हारा
मेरे पास आने का
वादा था,
सजनी,
पर तुमने आने में
विलम्ब किया और मैं प्रतिक्षा ही
करता रहा।
तुम मेरे हृदय की महारानी थीं,
सजनी,
तुम्हारे आगमन की उत्सुकता में
वियोग - वेदना की
तड़प से
लोट लोट कर
मैंने तुम्हारे पथ की
धूल साफ़ की।
अपने नेत्र - जल से
तुम्हारे मार्ग पर
छिड़काव किया
और फिर
तुम्हारे सत्कार के लिये
उस पर अपनी पलकों का
लाल - पट बिछाया,
तुम्हारी इस
स्वागत तत्परता में
मेरा सकल अस्तित्व गतिशील रहा,

तुम्हारा वियोग
मेरा जीवन था,
सजनी,
और जब तुम आईं तो मेरी उत्कंठा
सर्वथा लुप्त हो चुकी थी,
अपनी वेदना - तड़प से
मुझे मुक्ति मिल चुकी थी,
मेरे नेत्र - कलशों का छिड़काव - जल
समाप्त हो चुका था
और मेरे पलक - पटों की लचक
अकड़ पकड़ चुकी थी,
मैं पूर्णतः
निःशक्त, निश्चल, स्थिर
और गतिहीन
हो चुका था,
तुम्हारे आगमन पर
मैं तुम्हारे पग - चिन्हों का भी
चुम्बन न कर सका,
तुम्हारा मिलन
मेरा निधन था
सजनी,
अब तुम ही बताओ,
देवी कि
वियोग भला या मिलन ?

[१४–७–१९६८]

जंगल - राज

जंगल - राज
क्या अराजक राज ?
नहीं,
पल्लव, सुगंध, रंग
और रम्यता राज !

× × ×

विपिन - विधान,
क्या अवैध विधान ?
नहीं,
कोकिल - संगीत, मयूर - नृत्य,
पंचानन पखेरू और रींग - जंतु
विहारों का स्वातंत्र्य - विधान !

× × ×

अरण्य नीति,
क्या अनियामक नीति ?
नहीं,
जल - प्रवाह निर्झर और
हिम - दर्शन नीति

× × ×

कानन - संस्कृति,
क्या असांस्कृतिक संस्कृति ?
नहीं,
मदन -संस्कृति,
शारदा संस्कृति,
और इन के मध्य
गिरिजा - महादेव तांडव संस्कृति ! [१७-११-१९६८]

अप्रत्यक्ष शर्तें

मैं बस -ड्राईवर हूं।
मेरी श्रद्धानुसार मेरे इष्टदेव - विशेष
मेरी बस पर चित्र विराजना करते हैं।
अपने पर्यटनों में मैंने
उनके हाथों में
अपनी रक्षा सौंप रखी है
और मैं विश्वस्त होकर
निश्चिन्त हो जाता हूं कि
मेरे संरक्षण का स्थाई बीमा हो चुका है।
फिर न जाने क्यों
मेरी बस दुर्घटनाग्रस्त
हो जाती है ?
क्या मैं इसे अपने प्रति
अपने देव का,
विश्वासघात समझूं
या कर्त्तव्यहीनता ?
मैं ने तो निष्ठानुसार
उन्हें स्वरक्षा का स्थाई भार सौंपा था
किन्तु मुझे क्या मालूम था कि
यह कर्तृत्व मेरे देव ने केवल
अपनी अप्रत्यक्ष शर्तों पर स्वीकार किया था
और कि वह इसकी
कर्त्तव्यावधि के स्वयं ही निर्धारक थे !

[८-२-१९६९]

प्रतिछाया - मिलन

न जाने
किस अतीत से
हम दोनों का अनुराग है,
साजन,
और क्यों
हम एक दूसरे के
मिलन के लिये
सदैव लालायित रहते हैं।
× × ×
कल सायं,
एकाएक
बाज़ार के चौराहे में
हम दोनों की भेंट हो गई,
हम ने दूर से
एक दूसरे को देखा,
मुस्कान - विनिमय किया
और मिलनार्थ
एक दूसरे की ओर बढ़े।
× × ×
हम दोनों के पीछे
बिजली - प्रकाश का
एक एक
बाज़ार - स्तम्भ था।
उनका प्रकाश
हम दोनों के
मनोरम चेहरों की

अरुनाई पर पड़ कर
हमारे युवा लावण्यों की
अभिरामना को
कई गुना अधिक बढ़ा रहा था
और हम दोनों
एक दूसरे की
इस मनोहर छवि के प्रति
आकर्षित होकर
स्वतः
एक दूसरे की ओर
अग्रसर हो रहे थे।
× × ×
प्रकाश के
पीछे से आने के कारण
हमारे कलेवरों की
छायाकृतियां
हमारी अग्रता का
नेतृत्व कर रही थीं।
× × ×
ज्यों ज्यों
हम आगे बढ़ते थे
हमारी इन
परछाईयों का
पारस्परिक मिलन
निकटतर होता जाता था।
अन्ततः जिस क्षण
इनका वास्तविक मिलन हुआ
हम स्वयं
एक दूसरे से
अपने अपने कलेवर से

दूर थे।

× × ×

हमारे प्रतिबिम्ब
मिले,
परस्पर आलिंगनबद्ध हुए,
आपस में घुल - मिल गये
और
हम दोनों के
एक दूसरे के समीप
पहुंचते पहुंचते
प्यार - लुप्त भी हो गया।

× × ×

तुम्हारे पास पहुंच कर,
साजन,
अकस्मात मुझ पर
लोक - लज्जा का प्रहार हुआ
और मैं
दृष्टि बचा कर
तुम्हारे सामने से
एक ओर सरक गई
और उसी ओर से होकर
स्वभवन - बद्ध हुई।

× × ×

हमारे विछोह पर
हमारी प्रतिछायायें
फिर प्रबुद्ध हो उठीं,
प्रियतम,
और हमें
एक दूसरे से दूर

ले जाने के लिये
फिर हमारा नेतृत्व करने लगीं।

× × ×

कितने
छलिया हैं
यह हमारे साये
साजन !
अतीत से ही
हमारे बहाने
मिलनालिंगन द्वारा
यह अपनी प्यार-तृप्ति तो
कर लेते हैं,
पर, स्वयं हमें
यह एक दूसरे से
सर्वदा विरह - ग्रस्त
रखते हैं।

[१३-८-१९६७]

स्वार्थों के रूप

मैं भिखारिन हूं।

घर में मैं अपने पिया की
लावण्य - समृद्ध प्रेयसी हूं
पर, प्रकटत: मैं
अपने सौंदर्य को लोप रखने और
दारिद्रयाकार में अपना
कल्याण मानती हूं।
लक्ष्मी मेरी अर्थ - वाञ्छित
देवी है

उसको पाने के लिये मैंने
आत्म - प्रतिभा को
बलि - वेदी पर चढ़ाया है
गलियों में, बाज़ारों में,
रेल - डिब्बों और बसों में
मैं अपना याचना - कर
फैलाती हूं।

प्राय:
द्वार द्वार की दुत्कार
मानो मेरा
सत्कार है।
अकृत्रिम अथवा कृत्रिम आर्त्त - साधनों से
लोक - हृदयों को भी
द्रवित कर देने में
मैंने निपुणता पाई है
मेरे दान - कर्ता शायद

इतना धन - सामर्थ्य नहीं रखते
जो मैंने भिक्षुकता से जुटाया है
पर, उनका भिक्षा - दान भी,
मेरे अनुरूप,
स्वार्थ - सिद्धि से मुक्त नहीं।
स्वार्थ - भावना में हमारा
मंतव्य एक है
भेद केवल स्वार्थों के
रूप का है
मैं आत्माभिमान को लुटाकर
लक्ष्मी पाती हूं
और वह लक्ष्मी - बलिदान द्वारा
आत्म - कल्याण कमाते हैं।

[१६-२-१९६९]

अर्जुन ही अर्जुन

अदालत ने,
नर - वध के अपराध में,
मुझे हत्यारा
घोषित किया है और
मेरे लिये
गलफंद - द्वारा मृत्यु - दण्ड का
आदेश दिया है।
इस दण्ड - पूर्ति तक मुझे
कारागार की काल - कोठरी
का निवास
प्राप्त हुआ है।
मेरे साथ यह घृणापूर्ण
भर्त्सना का व्यवहार क्यों ?

आखिर मैंने
यह कार्य स्वेच्छा से तो
किया नहीं !
क्या मेरे इस कार्य के
पीछे कोई अप्रत्यक्ष
प्रेरणा नहीं थी ?
और इस प्रेरणा के स्रोत पर
मेरा क्या कोई वश भी था ?
मैं तो किसी महाभारत का
निमित्त - मात्र केवल एक
अर्जुन था।
क्या मेरे इस कार्य में

मेरे हाथों मरने वाले की
पहले ही से मृतशवावस्था
प्रविष्ट नहीं थी ?
इस विषय में
मेरे और मेरे जज में
अन्तर ही क्या है
जिसने मेरी भी हत्या का
आदेश जारी किया है
भेद तो केवल
हत्या - प्रणाली का है
वरण्
इस निरन्तर महाभारत के
चलते क्रम में
हम सब
अर्जुन ही अर्जुन हैं।
मैं तो एक तुच्छ
मानव हूं,
क्या गदा, चक्र या
खड़ग के प्रयोग से
कोई देव देव नहीं रहता ?
जीवरक्त - सेवन से ही
महाकाली की दिव्यता
चमकती है,
वक्ष पर घातक सर्प और
नरमुंड मालाओं से ही
महादेव का देवत्व
निखरता है ;
जीवों में कौन जीव,
न्यूनाधिक,
इस देव-स्वभाव से मुक्त है ?

सिंह के मृग - भक्षण,
बिलाव के मूषक द्वारा क्षुधा - निवारण
और
मीन का मीन द्वारा
उदर - पूरण क्या
इस देव - स्वभाव का
अंश नहीं ?
यही स्वभाव
मेरे अभियोग में
मेरी सफ़ाई है।
तो फिर मुझ पर ही
यह ग्लानि - वृष्टि क्यों ?
मुझे अनजाने ही
नरवधकरण
किसी अनियन्त्रित
अंतर प्रेरणा से उपलब्ध
हुआ।
अतः
मैं जनसाधारण के
तिरस्कार का नहीं,
उनकी संवेदना और
सहानुभूति का
पात्र हूं !

[५-८-१९६९]

सुगम मिलन

तुम मेरे प्यार ही का
साक्षात्कार हो,
सुहृद,
और मेरे शिखिरोच्च
लावण्य - कल्पना मंदिर की रम्य - मूर्ति !

अतः
तुम्हारे सुगम - मिलन
के लिये मैं स्वयं
अपने प्यार ही को
तुम्हारे अनुपम रूप में
परिणत कर लेता हूं।

मेरे प्यार में
लावण्य है,
माधुर्य भी और
आकर्षण भी ;
फलतः
यह सभी गुण
स्वतः
तुम्हारी आकार - प्रतिमा में
समाविष्ट हो जाते हैं,
जिससे अपने ही
अनुराग - बल से,
यथेच्छा,
मैं अपनी विरहाग्नि को
मिलनामृत - जल से

स्वयं बुझा लेता हूं

किन्तु,
मिलन के उस क्षण
मुख - स्पर्श के लिये
जब मैं अपने ओष्ठ
तुम्हारी ओर बढ़ाता हूं
तो मैं अपने - आप को
इतना वामन पाता हूं कि
मेरे होंठ
तुम्हारे मुखचंद्र की
ऊंचाई तक
पहुंच नहीं पाते और
मैं अपनी भरसक
अनुराग - तीव्रता और
परिपूर्ण भावोत्तेजना में
केवल मध्यवर्ती
अंतरिक्ष - शून्य को ही
चूम लेता हूं, और
लगता है, फिर भी, जैसे मैंने
तुम्हारे सकल कलेवर को
चूम लिया हो !

तत्काल ही
तुम्हें पाकर जब मैं
अपने प्यार - वेग में
तुम्हें अपने आलिंगन में
लेने को बाहें फैलाता हूं
तो पाता हूं
तुम स्वयं तो
मेरे बाहु - पाश से
लुप्त हो गये हो और

मेरी भुजायें
मेरे अपने ही वक्ष पर
जुड़ी की जुड़ी रह गई हैं !
तथापि लगता है
तुम्हारे इस लुप्ति कौतुक
के बावजूद
तुम समूचे मेरे
आलिंगन - पाश में
आन फंसे हो !

[२४-५-१९६९]

जल - राशि - सूत्र

मेरे घर में नल से
पानी आता है
इस जल के पीछे एक
सीमाबद्ध
राशि - स्रोत है
इस जल से मेरी
तृष्णा - तृप्ति होती हैं
मेरी काया तेरा अपना ही
घर है, जिसमें असंख्य नल लगे हैं
घट - घट के इस
नल - समूह से
तेरा प्यार - जल
पूर्ण वेग से
फूट - फूट छूटता है।
इस प्यार - जल के
अथाह, असीम
राशि - सूत्र
स्वयं तुम हो,
प्रियतम,
किन्तु इस में मेरी
सीमा - रहित तृष्णा की
तृप्ति की सामर्थ्य नहीं।

[१५-६-१६६६]

बिना - रोक प्रवेश

मैं अपने मकान के
दरवाज़ों और खिड़कियों को
रंग - बिरंगे परदों से
सजाती हूं ताकि
धूप की चुंधियारी और
उसकी तीक्ष्ण ताप - तरंगें,
अंदर आकर,
मेरे कोमल नेत्रों और
अंगों को सता न पायें
एवं
प्रचंड आंधियों की धूलि,
कमरे में प्रविष्ट होकर,
मेरे शरीर की विमलता को
मलिन न कर सके और
बरसात की तीव्र बौछारें
मेरे सूक्ष्म वस्त्रों को
नग्नार्द्र न करदें !
मैं इन परदों द्वारा तुमसे
अपने अपराध भी
छुपाना चाहती हूं,
साजन ! पर, मेरे यह परदे,
मेरे कमरे में,
तुम्हारी विद्यमत्ता को रोकने में
न जाने क्यों
असमर्थ हो जाते हैं ;

शायद यह तुम्हारे लिये
मेरे अनुराग से परिचित हैं
और
तुम्हें मेरे पास आने से
रोकने से डरते हैं—
तुम्हें मेरे अंदर प्रवेश की
बिना - रोक अनुमति
दे देते हैं!
और तुम हो,
कंत,
कि बाहिर खड़े - खड़े भी
इन परदों के प्रतिबंधों का
उल्लंघन कर
अपनी कड़ी और
अक्षम्य दृष्टि रखते हो और
प्राय: मेरी ही नज़रों को
अपनी नज़रें बना कर
मेरे प्यार की परीक्षा
लेते रहते हो।

[६-७-१६६६]

फिरदौस हमीं अस्त !

(अमरीका के अपोलो ११ से प्रभावित होकर)

मैंने आदि - सृष्टि से
स्वर्ग - गवेषणा की
और अपने कल्पना - पट पर
उसके कितने ही रूप
चित्रित किये ;
अपने इस जीवन में
उसकी प्राप्ति को
सदैव एक असम्भव ध्येय माना
और जीवनोपरान्त भी
उसके लिय
स्वप्नों का सृजन किया ।
अपनी मां वसुंधरा को छोड़
केवल अन्य नक्षत्रों को ही
रोमानपूर्ण सुरलोक के रूप में
कल्पित किया ।
पर, अब जब वस्तुत:
चंद्रावलोकन किया
और मंगल का भी
परीक्षण किया तो
पाया कि
मेरी धरती मां के अतिरिक्त
कोई ग्रह देवलोक नहीं
यहां ही स्वर्ग - अप्सराएं
नृत्यशील हैं,

यहां ही प्यार, सौंदर्य और
लालित्य का प्रसार है
यहां जान भी है और
जीवन भी।
पर - नक्षत्रों पर तो
निर्जनता और निर्जीवता
की 'प्रेतासुराएं' नाच
करती हैं,
जहां लक्ष्मी मूर्छित
निद्रा में सोती है,
जहां शारदा के लिये
प्रवेश - निषिध है
जहां कला, सभ्यता और
संस्कृति निर्वासित हैं
जहां खाद्य कोई पदार्थ नहीं
पीने को जल नहीं,
श्वास - गति के लिये हवा नहीं।
मैंने चांद पर पहुंच कर
उस फारसी - कवि के
कथन को सत्य किया
जिसने कश्मीर की
मनोरमता से प्रभावित
हो कर
गाया था——
"अगर फिरदौस बर - रूए जमीन अस्त,
हमीं अस्त, हमीं अस्त
हमीं अस्त !"
यह कथन केवल
कश्मीर के लिये ही नहीं

समूची वसुधा के लिये
पूर्णतः सत्य है।
मुझे अनुमान हुआ कि
यह रवि, मंगल, बृहस्पति
और शुक्र——
यह सकल ब्रह्मांड——
मेरी ही सेवा को अर्पित है,
जीव - जीवन के लिये
निर्मित
मैंने स्वयं अपने आप का
परिचय भी पाया और पहचाना कि
मैं अपने जीवन में ही स्वर्गधाम
का वासी हूं और कि
मेरा यह स्वर्गलोक
परलोक नहीं !
मुझ में सामर्थ्य है
मैं अपने इस निवासालय को
और भी विस्तृत करूंगा
और
दूसरे नक्षत्रों को भी असुर - लोकों से
देवलोक बनाऊंगा,
'प्रेतासुराओं' को
निर्वासित कर
यहां की 'देवाप्सराओं' को
वहां लेजाकर
बसाऊंगा !

[२-८-१९६९]

दाग़दार हाथ

लावण्य और सौशील्य की
बात न करो,
युवक,
यह गुण भाग्यजन्य और
भाग्य - नियंत्रित हैं
इनकी अपनी कोई
स्वतंत्र सत्ता नहीं।
तुम इनके कारण
मेरी ओर आकर्षित हुए
और इन्हें पा भी लिया ;
पर,
तुम अपना भाग्य
मेरे भाग्य के साथ
जोड़ न सके
मेरे सौंदर्य और सौजन्य
का संरक्षण
तुम्हारे जीवन के साथ आबद्ध
तो हुआ
पर तुम,
अपने कर्त्तव्य - पालन में
असफल रहे।
तुम एक अच्छे, समृद्ध
और सुशील
घराने के नेत्रदीप थे
तुमने उस घराने के

भाग्य से भी
अपने भाग्य का सम्मिलन
न किया
तुम स्वयं अच्छे वेतन के
अधिकारी और
अतिरिक्त आय के कमाऊ थे,
पर तुमने अ ।ना और मेरा
सर्वस्व ––
वस्त्र, भूषण, कलश, घर का
तृण तृण
मद्य - पान और दाव
के अर्पण कर दिया
और मुझे प्रत्येक
जीवन - आवश्यकता से
रिक्त !
चिन्ता ने मेरा सुख और
मानसिक चैन लूट लिया
स्वयं मरा जीवन मुझे
काट काट खाने लगा।
मैंने इससे छुटकारा
पाने की ठान ली,
और अपने चीथड़े वस्त्रों पर,
तुम्हारे सन्मुख ही,
अपने - आप को अग्नि - मां
की गोदी में धर दिया।
आग की जलन और
तपश ने थपकियां
देकर
मुझे सौख्य निद्रा में
सुला दिया।

यह अग्न - पीड़ा मुझे
राहत - प्रद लगी।
तुम ने आग बुझाने के
निश्फल प्रयास में
अपने हाथों को भी
जला लिया।
पर, प्राण - पखेरू ने
उड़ना ही था, उड़ गया
और अपने साथ
ले उड़ा मेरा
लावण्य और सौशील्य भी !
तुम ढारें मार
देखते ही रह गये
और सदा के लिये,
मानो पुरस्कार में
पा ली निरंतर मेरी
तीक्ष्ण याद
दुःखद यातना और छाती
पीटने के लिये
अग्नि द्वारा
दाग़दार हुए हाथ !

[२१-६-१६६६]

प्रणय - श्रेय

तुम स्वयं सौंदर्य के
महासागर हो
साजन !
मेरा यह अनन्य
सौभाग्य है कि
तुमने मुझे अपना
प्रणय प्रदान किया है ।
इस श्रेय के लिये
तुमने अपना बूंद - भर
लावण्य मुझे उधार में
दिया है और
सुहाग - बिंदु सजाने
और मांग भरने के लिये
अपने भाल - तिलक का
अंश भर सिंदूर ।
मेरे गोरे गालों में
अरुणिमा - विभूषण के लिये
तुमने मुझे
अपने ही कपोलों की कुछ
लालिमा दान में दी है
मेरा यौवन तुम्हारे हा
अमर यौवन की एक
अल्प सी देन है ।
मेरा अपना कुछ भी नहीं,
साजन,
तुम मेरे सर्वस्व के
स्वामी हो !

[२-१०-१९६९]

अन्तर्प्रेरणा का आर्तनाद !

मुझे बचाओ
मैं लुट गई ;
मेरी आभा,
मेरी प्रतिभा,
मेरी लज्जा,
मेरा स्वत्व लुट गया ;
मुझे अन्तर्प्रेरणा कहते हैं,
स्वातंत्र्य मेरी
प्रकृति था,
देवत्व मुझ में निहित था,
मैं मानव सदाचरण की
प्रेरक थी,
राज दरबार के बल - बूते
दुष्ट स्वार्थ - दुःशासन ने
मेरी स्वाधीनता,
मेरे स्वाभिमान को जीत
मुझे बंदी कर लिया है
वह भरे - दरबार में
मेरे दिव्य चीर
हरण कर रहा है,
मनुजता के पथ - प्रदीप
होने की शक्ति से मुझे
वञ्चित कर दिया गया है,
राजादेश अनुसार
मेरा रूप अब

अन्तप्ररणा से
स्वार्थ प्रेरणा में परिणत
कर दिया गया है
सच्चरित्र और दुष्चरित्र
के मध्य भेद -परीक्षण की
क्षमता मुझसे
छीन ली गई है,
अनियमन,
अनानुशासन और
अतथ्य अब
मेरे नाम पर
पोषण पाते हैं,
मैं अन्तर्प्रेरणा हूं
मेरा आर्तनाद है
मुझे दुःशासन स्वार्थ के
फंद से छुड़ाओ,
मुझे मेरा स्वत्व
वापिस दिलाओ !

[१२-१०-१९६९]

धूम्र और वाष्प

रेल - इंजन ने
अपने शीश - भौंपू से
श्याम - धूम्र छोड़ा
और 'चरण - धूतू' से
श्वेत वाष्प ;
एक दूसरे के मिलनार्थ
क्रमश : दोनों
ऊपर की ओर उड़े ;
उड़ते हुए धूम्र ने
माधव - रूप भरा और
वाष्प ने अनुराधा - रूप
और दोनों परस्पर
आलिंगनरत हुए
जन - दृष्टि से
बचने के लिये, दोनों ने
आलिंगनावस्था में ही
अन्तरिक्ष - लुप्ति पा ली
दर्शक चकित - चक्षुओं से
देखते ही रह गये
और सहसा बोल उठे
किधर गये श्याम, किधर गई राधा !

[२६-१०-१९६९]

मेरे घर का प्रिय संगीत

मेरा निवास - स्थान
मेरा अपना पैतृक
घर है ;
इसी घर में मैंने
जन्म पाया—
तब यह माटी - गारे की
बनी कच्ची कुटिया थी ।
मेरे जन्म पर
मेरा यह घर
वधाई - नाद के स्वरों से
गूंज उठा ;
इसी कच्चे घर में
मैंने आयु पाकर
लक्ष्मी एकत्र की
और इसकी छत
तथा दीवारों को गिरा दिया ;
उसके स्थान पर एक
पक्का ईंट, शंखमरमर,
सीमेंट, चिप्स आदि नवीन
मसालों से बना
भव्य प्रासाद निर्मित किया ;
मुझे फिर वधाइयां मिलीं
मैंने अपने जीवन की सकल
आकांक्षाएं इस घर के साथ
सम्बन्धित कर दीं !

इन अपने पुरातन
और नूतन घरों में
कुछ समय, यथा - सम्भव,
मैंने कितने ही
कल्लोल - कल कल उठाये
प्यार - प्रदर्शनियां कीं
और सुख - संगीत गाये ।
किन्तु तुरंत ही इसी नवीन
रम्य, आकर्षक
भव्य प्रसाद के चिप्स - जटित
फर्श पर मुझे अपना
निधन - शयन मिला और
मेरा यह घर शोक - नाद के
आर्तस्वरों से कोलाहित
हो उठा :
मेरे इस घर के फर्श
छत, कंध, और द्वार
विचित्र कर्ण - रस के रसिक हैं
इनको क्रम - क्रम से
बधाई और शोक दोनों
स्वरों का संगीत
प्रिय है !

[९-११-१९६९]

मेरी दीवाली

नन्हे - मुन्हों के अधरों की
मुस्कानें
फुलझड़ियों से झड़ते
रंग - बिरंगे प्रसूनों के
झरने,
माटी एवं विद्युत
दीपावलियों से उमड़ते प्रकाश के
खज़ाने,
जगते अनारों से उभरते
ज्वलंत फ़व्वारे,
रमा - रूप में आराध्य नारी के
रूप की समृद्ध छटा के
नज़ारे——
यह समूचा मनहर दृष्य
मेरी दीवाली है

[२३-११-१९६९]

मीन - मानव मनोरञ्जन

मैं नदी के तट पर खड़ा
गहरे स्वच्छ जल में नेत्र - प्रिय
रंग - बिरंगी मछलियों के
आहार - विहार और खेल - कूद का
आनंद लेता हूं ;
मेरे दुखाद्य - उपहारों को
मुख से उछल और झपटकर
स्वीकर करने की
इनकी रुचिकर क्रिया से
मैं अत्यन्त मनोरञ्जन
पाता हूं ;
कांच - स्वरूप निर्मल
जलाशय में इनका जीवन है ;
मेरे मानवीय प्राण
मेरे अंतरिक्ष - पवनालय में हैं
मैं अपने इस मानवालय से
निकल कर जल - मत्स्यालय में
प्रविष्ट हो
मछलियों के मनहर क्रीड़ापूर्ण
जीवन में अपना जीवन
सम्मिलित करना चाहता हूं,
पर, इनका यह जीवनालय
मेरी काल - कंदरा है ;
मैं इन जल - नर्तकियों को
अपने अन्तरिक्षालय में भी

आमंत्रित नहीं कर सकता
क्योंकि मेरा यह प्राणालय भी
इनका निधनालय है ;
अत : अपने अपने
निवासालयों से ही
एक दूसरे को स्नेहपूर्ण नेत्रों से
देख कर
मनोरञ्जन पाने में
हम पारस्परिक
संतोष प्राप्त करते हैं !
किन्तु एक दूसरे के प्रति हमारे
अनुरागों के निकट
इन प्रतिबंधों को कोई मान्यता
प्राप्त नहीं
हमारे
स्नेह एक दूसरे के
घरों में घुसपैठ करके भी
परस्पर आलिंगन कर लेते हैं
और आपास में
गांठबद्ध हो जाते हैं।

[२६-११-१६६६]

कारटून - प्रहसन

मुझे धनुर्धर न कहो
मुझे वंशीधर भी न कहो,
न ही मैं चंद्र - मुकुटधारी हूं
न ही मेरा शीश गंग - निर्झर का स्रोत
मेरा वक्ष भी व्याल - विहार का
कोई स्थान नहीं,
न ही मुझे अपने गले में सदैव
वैजयन्तिमाला सुसज्जित रखने की
बान है और
न ही हाथों में सर्वदा
शंख, चक्र, पद्म और गदा ही
धारण किये रखने की आदत,
मेरा मुंह बंदर, हाथी, वराह अथवा
सिंह का भी कोई मुंह नहीं
न ही हंस, गरुड़, बैल या
पंचानन मेरे वाहन हैं ;
मेरे यह रूप किसी कारटूनिस्ट
की केवल काल्पनिक कलाकृतियां हैं
जिनसे स्वेच्छा स्वरूप - निर्माण की
मेरी योग्यता सीमा - बद्ध
होकर रह गई है,
मेरी इस क्षमता के साथ
यह सर्वथा अन्याय है,
मुझे इस पारम्परिक अन्याय और
कारटून - प्रहसन से
मुक्त करो...ओ !

[४-१२-१९६९]

अपूर्ण घूंघट

लोग कहते हैं,
गोरी,
तुम सौंदर्य में
अनन्य हो
इस लोकोक्ति से ही
मैं तुम्हारे कल्पित
लावण्य पर
आसक्त हो गया हूं।
मैं सहस्रों प्रयत्न
करता हूं, पर,
तुम्हारा मुखड़ा
देख नहीं पाता।
लाख प्रयास करता हूं
कि मुझे कहीं
तुम्हारे पद - पद्म ही
दृष्टिगोचर हो जायें
किन्तु मुझे सफलता
नहीं मिलती
और मैं स्वतः ही तुम्हारे
अनगिनत वदन - चरणाकारों की
कल्पना करता रहता हूं।
अतीत से मुझे केवल
तुम्हारी कोमल बाहें
और गुद - गुदे कर - कमल ही
नज़र पड़ते हैं जो सदैव

तुम्हारे अपने आवरण की
कशीदाकारी में संलग्न
रहते हैं।
बुनना और उधेड़ना——
तुम्हारी यह निरंतर
निर्माण कला है ;
फिर भी, गोरी—तुम्हारा घूंघट
सम्पूर्ण होकर भी
हमेशा अपूर्ण ही रहता है।

[११-१-१९७०]

कपट - प्रदर्शनी

मैं तुम पर अतीत से
आसक्त थी,
वसुधा - सुत मानव,
ब्रह्मांड भर में ढूंढने पर भी
मुझे तुम जैसा
किसी अन्य स्थान पर
नहीं मिला।
मैं विश्व में
शशि के नाम से
विख्यात हूं
मैं लोक दृष्टि और
कवि - नज़रों में
लावण्य का अनन्य
उदाहरण हूं।
पर, मैं स्वयं अत्यन्त
रूपहीना हूं और
मेरा चेहरा समस्त
चेचक - चिन्ह भरा है।
तुम्हें भरमाने और
अपनी ओर आकृष्ट
करने के लिये
मैंने दिवाकर से
गौरव चुराया
और निशा की ठंडक में
शीतल कर तुम पर

मैंने अपना कृत्रिम
सौंदर्य झलकाया।
अतीत की छल पूर्ण
साधना के उपरान्त
आखिर मैंने तुम को
पाया।
मैं सोचती थी मेरा
अतीत का प्यार
तुम पर विजयी होगा
और तुम मेरे रूप से नहीं,
मेरे प्यार से
मुझे अपना लोगे
किन्तु वही हुआ
जिसका मुझे डर था।
मेरा रूप मेरे प्यार के
पथ का पाषाण हुआ।
मेरे रूप की यथार्थता से
तुम हताश हुए और
मेरा छल तुम पर
आविष्कृत हुआ ;
तुमने मुझे रमणी के
स्थान पर एक डायन समझा
और तुम रोष से
अपने आप में न रहे ;
तुमने मुझपर कुदाल से
प्रहार कर दिया और
कितने ही किलोग्राम
मेरा मांस नोच लिया
और मुझे शरीर और
हृदय दोनों से हताहत कर

तत्काल अपनी जननी
के पास लौट गये ;
अब जगह जगह तुम
मेरे कलेवर के अंशों की
प्रदर्शनी कर
मेरे कपट को अपने
बंधुओं पर व्यक्त करके
मुझे बदनाम कर रहे हो ;
पर, याद रखो, मानव,
मेरा प्यार डायन का
प्यार नहीं,
एक विमल - हृदया रमणी
का प्यार है,
मेरे शरीरांशों का जब भी
तुम विश्लेषण करोगे
तो तुम्हें जानकारी होगी
कि इनके अणु - अणु में
तुम्हारे लिये
लाभकारी अनुराग
भरा है !

[२५-१-१९७०]

भिन्नता में एकता

मैंने सप्ताह के
प्रत्येक दिवस को
किसी देव - विशेष के साथ
जोड़ रखा है ;
महादेव के साथ सोम को,
बजरंगबली के साथ
मंगल को,
महागुरु के साथ
बृहस्पति को,
एक के साथ दूसरे
दूसरे के साथ तीसरे को...
प्रत्येक देव को भी मैं ने
अपने जीवन की किसी
विभक्ति - विशेष के साथ
संबंधित कर रखा है ;
त्रिनेत्र को कल्याणार्थ
महावीर को कुशल - क्षेमार्थ
शुक्र को प्राक्रमार्थ,
और शनि को महाकालार्थ
किन्तु वस्तुत :
मेरे किसी भी देव को
किसी दिन विशेष के साथ
कोई लगाव नहीं ;
उसकी कार्य - चर्या के लिये
कोई भी दिन - विशेष
उपयुक्त है ;
कितने ही शनैश्चर मेरे

महा कल्याण और महामंगल
के दिन होकर आते हैं,
मेरे महाप्राक्रम के हरणार्थ
कोई भी शुक्र
मेरे महागुरु के लिये
अनानुमतिपूर्ण नहीं,
मुझे अपनाने के लिये
महाकाल के निकट कोई भी
मंगल अरुचिकर दिवस नहीं ;
अत :
इन दिनों की भिन्नता
मेरे देवों की अनुरूपता
के साथ कोई समानार्थ
नहीं रखती
इन सभी वासरों की
विभिन्नता में
मेरे सकल देवों की
एकता परिपूर्ण है !

(अपूर्ण)

[२२-३-१९७०]

डुबकियां

मैं प्रत्येक रात्रि को
और प्राय: दिन को भी,
तुम्हारे आगमन की
प्रतीक्षा करता हूं
और उत्सुक होता हूं
कि मुझे तुम्हारी
वदनाभा की झलक
मिल जाये ;
पर तुम जादूगरनी हो,
निद्रा रानी,
तुम अदृष्टता का
आवरण ओढ़,
अपने कलेवर को
छुपा कर,
चुपके से आती हो
और न जाने किस क्षण,
किस काली कला द्वारा,
मेरी जागृति को गौण कर,
मुझे अपने अन्तर के
महासागर में डुबो लेती हो ;
जहां प्रतीत होता है
जैसे मैं अनहोने और
अद्भुत स्थानों पदार्थों,
दृश्यों और मूर्तियों की
नाट्यशाला में

प्रविष्ट हो गया हूं और
जहां मैं अनेक अलौकिक
सुख, मनोरञ्जन, हर्ष
रोष, भय आदि विविध
अनुभूतियों का अनुभव
करने लगता हूं।
तुम्हारे अन्तरसागर की
इस डुबकी में
मुझे आनंद - एवं जीवनप्रद
ऐसे गोते लगने लगते हैं
जो प्रत्यक्ष जलनिधियों के
काल - जनक गोतों की तुलना में
अपनी विशेष
भिन्नता रखते हैं।
अत: मैं आकांक्षा करता हूं
कि तुम
जादुगरनी की तरह
अदृष्टरूप से, चुपके से,
आती रहो और
अपनी काली कला द्वारा,
मेरी जागृति को गौण कर,
मुझे अपने अन्तर के
महासागर में सर्वदा
डुबकियां देती रहो !

[२७-५-१९७०]

फीकी मिठास !

मेरा प्यार मीठा
मेरा सौंदर्य मीठा,
मेरा वचन मीठा,
मेरा आचरण मीठा ;
इस प्रकार
मैं स्वयं समूचा मीठा !
मैंने अपने
इस मीठेपन का अमृत
तुम्हें समर्पित किया है।
पर मैं शक्कर - पात का
रोगी हूं,
स्वयं मेरे लिये
मिष्ट - पान विष,
मेरे रक्त - मूत्र में
मिष्ट - वृद्धि विष ;
फीके खाद्य,
फीके पेय
नाम को मीठी,
किन्तु निहितत :
फीकी सैकरीन,
अर्थ यह कि
शुद्ध फीकापन
मेरा जीवन है,
मेरे प्राण - सृजन का
अमृत !
जब कभी मैं
लोलुप रुचि से

मिष्ठ - पान की
चेष्टा करता हूं
तो तुम मुझे
इस आत्माघात से
रोक देती हो ;
तुम अपने हाथों से
फीका दूध,
फीकी चाय,
और अन्य फीके पदार्थ
मुझे सेवन के लिये
प्रस्तुत करती हो
तुमने इस फीकेपन का
जीवनामृत
मुझे समर्पित किया है।
तुम्हारा यह फीका उपहार
मेरे मिष्ट - उपहार का
बदल है,
पर, तुम्हारे इस
फीके उपहार में
छिपी है
तुम्हारे मधु - हृदय की
प्यार - भरी
मिठास !

[६-५-१९७०]

सम - स्तर

श्याम झलक राम की,
श्याम की श्याम छटा,
हरि का श्याम वर्ण
श्याम रंग हर का ;
इस श्याम ज्योति ने पाई
दिव्यता की आभा !
गौर - झलक वैदेही की,
अनुराधा की गौर छटा,
रमा का गौर वर्ण
गौर रंग सती का ;
इस गौर ज्योति ने पाई
रसता की सुगंध !
यह सुरभि उड़ी,
रसता की,
दिव्याभा के प्रति
करने आत्म - समर्पण ;
रसभरी सुवासना पर
हो मुग्ध
तत्क्षण अपनाया
श्याम दिव्याभा ने
गौर रसता को
और विराज लिया

लपक कर उसको
अपने बाईं ओर,
सम - स्तर,
मंदिर के सिंहासन पर
और उंडेल दी
उसपर भी अपनी
दिव्याभा की
कटोरी !

[१४-६-१९७०]

मुक्ति से मुक्ति

मुझे इसी दुनिया में
रहने दो
मैं इसी दुनिया में
रहना चाहता हूं
सब भव मुझे प्रिय है
इसका प्यार
मुझे प्यारा है,
इसका सौंदर्य सुंदर
और इसकी
मादकता मादक ;
यह स्वर्ग हैं तो भी
मेरा है,
यदि है नर्क
तो भी मेरा,
मुझे इसके सुख
और दुःख
दोनों सुखप्रद हैं,
मुझे इसके ही
संगीत का संगीतकार
बना रहने दो,
इसी के नृत्य का
नर्तक और
इसी के रुदन का
रोदक !
स्वर्ग है या नर्क—

मुझे इसी का वासी
बना रहने दो !
भवता गति है और
इससे मुक्ति
मौनता,
निष्क्रियता ;
मुझे मौन और
निष्क्रिय न करो !
मैं तो सदैव
वक्तृत्वशील,
गतिशील और
संघर्षशील रहना
चाहता हूं ;
यह किसका कथन है
कि भवता में तुम्हारा
मिलन और
विलीनता उपलब्ध नहीं ?
क्या तुम स्वयं
भव - पाश के बंदी नहीं
क्या यह बंधन
हम दोनों का
सांझा बंधन नहीं ?
मुझे इस रस - आनंद से
वञ्चित न करो,
मुझे इस मुक्ति से
मुक्ति दिलाओ,
मुझे इसी दुनिया में
रहने दो !

[६-६-१९७०]

प्यार - रज्जु

मैं किस प्रकार
तुम्हारे पास
आ पाऊं,
मेरे साजन,
मैं तो धरती - स्थित
झोंपड़ी में
रहती हूं और
तुम अगम्य ऊंचाई पर आकाश - दुर्ग
बना कर
उसमें निवास
रखते हो
जिस को कोई
सीढ़ी नहीं ;
तुम तो दुर्ग के
झरोखों से
अविरल
मुझे देखते हो,
पर, मैं तुम को
धरातल से
देख पा नहीं
सकती ;
मेरे पंख भी नहीं
जो उड़ कर ही
तुम्हारे पास
पहुंच जाऊं ;

मेरे - तुम्हारे मिलन का
साधन भी
तुम्हारे ही पास है
तुम स्वयं चुम्बक हो,
अपनी एक आकर्षण - किरण
मुझ पर फेंको और
मुझे ऊपर अपनी ओर
खींच लो !
या फिर तुम अपना
प्यार - रज्जु
दुर्ग से नीचे लटकाओ
जिस के द्वारा
चढ़ कर
मैं तुम्हारे पास
आ पहुंचूं !

[३०–६–१९७०]

मुक्ता - चयन

मैं वकील हूं
कानून - प्रयुक्ति
मेरी वृत्ति है,
मैं अपने वाद - तर्क हित
विधि - कोष से
मुक्ता - चयन
करता हूं,
और डुबकी लगा
कानून के सागर - तल से
मुक्त - चयन
करता हूं,
मेरे वादियों में
मानव भी हैं,
दानव भी, और
देव भी ;
अपने श्रम - बदल में
मैंने इन सब की
चिंताएं मोल ली हैं ;
परस्पर प्रतिद्वंद्विता में
एक दूसरे के विरुद्ध
मैंने बिना - भेद
इनके बिगड़े भाग्य
संवारने का भार
अपने ऊपर लिया है ;
नुक्ता - थपन द्वारा

इन चिताओं को
लुप्त करने और
मुक्ता - जड़ाव द्वारा
इन भाग्यों को
चमकाने की मैं
भरसक चेष्टा करता हूं ;
इन चिताओं और
भाग्यों का अपना
द्वंद्व है,
भाग्यों के जगने से
यह चिन्ताएं सोती हैं
और उनके सोने से
यह जाग्रत होती हैं,
किन्तु यह भाग्य
और चिताएं
जागें या सोयें
मैं स्वयं निर्लेप
रहता हूं,
मैं अपने वादियों के
भाग्यों और चिताओं से,
इनसे खेलते हुए भी,
अछूता रहता हूं ;
मैं वकील हूं,
निर्लेप वकील !

[१८-७-१९७०]

असंख्य नयनी

तुम त्रिनेत्र
महादेव हो
नाथ !
और मैं केवल
द्विनेत्री गिरिजा
पर
तुम तो सदैव
त्र्यम्बक ही
रहते हो
और मैं
जब तुम्हारी ओर
निहारती हूं
या तुम्हारा
चिंतन भी करती हूं
तो मेरा रोम रोम
एक एक नेत्र
बन जाता है,
मैं असंख्य नयनी
हो जाती हूं
और मेरा सकल कलेवर
नयन - मुक्ताओं से परिपूर्ण
एक सजीव प्रतिमा.
मेरे इन कायाभरे
नेत्र - रत्नों में
तुम्हारी अनगिनत आकृतियां

अंकित हो जाती हैं ;
किन्तु
इन असंख्य आननाकृतियों
के बावजूद
मुझे तुम
केवल एक ही
त्रिलोचननाथ
दीख पड़ते हो !

स्वामित्वहीन स्वामी

मैं प्राणी हूं
मैं प्राण - सम्पदा का
स्वामी हूं।
मैंने यह सम्पदा
समय की स्फुरित - मुद्रा से
जुटाई है
और दिन और रात
इस मुद्रा के
दो श्वेत और श्याम
पक्ष हैं।
किन्तु फिर भी
यह सम्पदा
न तो मेरी निजोपार्जित है
न ही मुझे यह
विरासत में मिली है
और न ही इसका
यह मेरा स्वामित्व ही
मेरा अपना है।
मुझे मालूम नहीं कि
यह सम्पदा मुझे
अल्प मात्रा में उपलब्ध है
अथवा वृहत् मात्रा में।
अत :
मैं नहीं जानता कि मैं
समृद्ध धनपति हूं
अथवा धनहीन कंगाल।

किन्तु
यह मात्रा
चाहे कुछ भी हो
मैं अपनी इस
सम्पदा को प्यार करता हूं
इसके अस्तित्व में
अपना अस्तित्व पाता हूं
और इसके निधन में
अपना अवसान,
मैं प्राण - सम्पदा का
स्वामी हूं
स्वामित्वहीन स्वामी !

[१८-७-१९७०]

पत्नी के प्रति

तुम मेरे साथ,
दाम्पत्य में
सुहाग - डोरी से
परिबद्ध हो,
भार्ये !
जगत भर की
नारी - जनसंख्या का तो
मुझे ठीक ज्ञान नहीं,
पर,
भुवन की सकल
रमणियों में मुझे
केवल एक तुम्हारा ही
कर - दान उपलब्ध
हुआ है ;
अत :
मेरे लिये तुम एक
अद्वितीय उपहार हो
मेरे अन्तस्तल की
अनन्य विभूति !
सौंदर्य - प्रतियोगिताओं में
सम्मिलित होने वाली
कथित विश्वसुंदरियों
के अनुसार
मैं यह झूठा दावा तो
नहीं करता कि
सौंदर्य में तुम

संसार की सभी
नारियों में सर्वोपरि हो ;
पर,
तुम्हारे लावण्य में
मेरे प्यार की पुट है
प्रिये,
इसकारण मुझे तो
केवल तुम्हारा ही एकमात्र
रूप सुंदरतम
नज़र आता है
जिससे तुम
मेरे हृदय - भवन की
अनन्वित वासिनी
हो गई हो !
तुम्हारी सुंदरता और
मेरे प्यार के
इस सम्मिश्रण ने,
भद्रे,
हमारे हृदयों को
एक दूसरे में
अन्तर्लीन कर दिया है
जिससे हो गये हैं
हमारे एक दूसरे के प्रति
आकर्षण समान,
हमारे हर्ष और
विषाद समान ;
एवं हो गई हैं
हमारी आकांक्षाएं समान,
भावनाएं समान,

कामनाएं समान ;
और कर दिया है
इन समान
आकर्षणों,
हर्षों,
विषादों,
आकांक्षाओं,
भावनाओं और
कामनाओं ने हमें
एक - रंग !

जब मैं तुम को प्यार करता हूं

जब मैं तुमको
याद करता हूं ।
तो मेरी कल्पना के
रंगमंच पर तुम
नाटक के नायक
के रूप में
आन उपस्थित होते हो ।
विविध वेश - भूषाओं
और
नाना आकृतियों
के साथ
कभी तुम वैजयन्तीमाल पहने
अपने मनमोहक
लावण्यकार से मुझे भरमाते हो
और कभी
मुंड - एवं - नाग मालाओं सहित
भयानक
रूप भर
मुझे परिष्कृत करने की चेष्टा करते हो ।
कभी किसी को हंसाते हो
और कभी रुलाते हो
कभी किसी से प्यार करते हो
और कभी उसकी विरहाग्नि में
जलाते हो ।
और विचित्रता यह है कि

इस नाटक में
अन्य कला पात्र
स्वयं तुम्हारे
असंख्य दर्शन
ही होते हैं
जिनको रंगमंच पर
लाये बिना ही
तुम स्वेच्छा से
स्वयं अपनी
अभिव्यक्ति
द्वारा
उनसे अभिरूपण
करवाते हो।
कभी किसी को
जीवनान्त प्रस्थान
कराते हो
और कभी उसको फिर
संजीवनी लौटा देते हो।
और तुम्हारा यह
असमंजसमय
दु:खान्त
और सुखान्त
घटनाओं का
अभिनय
निरंतर सरिता - स्रोत की
तरह
प्रवाहित रहता है
असंख्य ग्रह - उपग्रह,
वन - उपवन,
झील
सर - सागर

और निर्झर,
हिमगिरी,
कुटीर - प्रासाद
आंधी - तूफान,
भूकम्प और
वर्षा - बाढ़
तुम्हारे इस नाविक
की
पृष्ठ भूमिका है
जिनका
पट - परिवर्तन
दृश्यानुसार
और स्थिति - अनुसार
तुम स्वयं
कर लेते हो।
तुम्हारे इस नाटक का वार्तालाप
किसी मूकामूक भाषा तक सीमित
नहीं,
और तुम्हारी
भावुकता
मनुष्य, पशु, पक्षी,
कीटाणु,
जलचर
थलचर,
और नभचर जीवों की
भावनाओं में
फर्क नहीं रखती
और न ही तुम्हारी अभिव्यक्ति सुर, दानव और
जीवाजीव में
भेद पहचानती है।

तुम नटराज हो,
बहुरूपिये हो।
वस्तुतः तुम महानतम चित्रकार, महानतम संगीतकार
महानतम मूर्तिकार,
महानतम नर्तक,
महानतम वैज्ञानिक,
महानतम निर्माता
और महानतम विध्वंसक हो,
मेरी याद
तुम्हारा चित्र - पट है
जब मैं तुमको
याद करता हूं
तो बिना प्रवेश - पत्र
मैं तुम्हारा खेल
देखने लगता हूं।
तुम महान कलाकार हो
किन्तु मैं तुमको
हर रूप में
पहचान लेता हूं
क्योंकि तुम
मेरे प्रेम - पात्र हो।

याद के बंदी

मुझे वह दिन याद है,
साजन,
जब तुम
अपने चन्द्र वदन को
प्रसूनावृत कर आये थे
और मैंने
जय - माला डाल कर
तुम्हें अपनाया था
और तीव्र प्रकाश की बाढ़ में
तुम ने अपने रुख से
कुसुम - लड़ियां हटाकर, मेरी रूपछटा को निहारा था
और मैंने मुख के
पतले वस्त्रावरण के मध्य से
छिपी - छिपी निगाहों से
तुम्हारी रूप - छवि का,
रसास्वादन किया था
कितना रोमांचकारी था
वह दृश्य, प्रियतम
इस दृश्य
और परिणय के कितने ही
अन्य रोचक दृष्यों के फ़ोटो - चित्र
मेरे चित्रग्रह - अल्बम - को आज भी
सुसज्जित करते हैं
कितना अनुपम होता था
वह समय

जब हम दोनों इक्ट्ठे अपने
इन चित्रों को देखते थे
और आनन्दविभोर हो जाते थे।

पर अब
जब मैं अकेली अपने इस चित्र - संग्रह को खोलती हूं
तो मेरी उत्सुक विह्वलता पर
तत्क्षण स्तब्धता छा जाती है
और मैं स्वयं
अथाह शोक - सागर में डूब जाती हूं।

जब तुम थे
तो यह निर्जिव चित्र भी सजीव थे
और जब तुम नहीं
तो इन चित्रों की यथार्थता भी लोप
हो गई है
मेरे प्रथम स्वागत के दिन
केवल एक बार ही
मेरी जयमाला स्वीकार कर
तुम ने मुझे अंगीकार कर लिया था
अब मैं प्रति प्रातः
तुम्हारे फोटो चित्र को
जयमाला पहनाती हूं
पर तुम अचल और मूक
दृष्टि से मेरी ओर निहारते हो
किन्तु मुझे अपनाने के लिए
तुम्हारी बाहें
मेरी ओर नहीं उठतीं
तुम अपने समय के
महान नायक और
मुख्य चित्रपट अभिनेता थे
साजन।
और मैं तुम्हारी

सहसंगिनी गायिका और
अभिनेत्री।
कितने ही चल - चित्रों में
हम दोनों ने
प्रधान नायक - नायिका का
रोल प्रस्तुत किया है
इसी सहकारिता में
हमारे अभिनय - प्रेम का
कृत्रिम स्वरूप
यथार्थता में परिणत हुआ
और जीवन संगी होने के
हमारे पारस्परिक प्रण - वचन हुए।
हमारी जातीयता अलग थी
हमारे धर्म अलग
प्रतिगामिता और रूढ़िवाद ने भरसक विरोध किया
पर, हमारा प्रणय परिणय में परिणत हुआ !
हम दोनों चित्रपट पर
अपनी क्रीड़ायें
देखते और पुनः कल्लोल - उत्सुक
हो जाते थे
कितनी वास्तविकतापूर्ण थीं
यह प्रणय - क्रियाएं।
जब अकेली उसी प्रकार
चल चित्रों में
मैं इन कल्लोल - क्रीड़ाओं को देखती हूं—
तुम्हारा रूप, तुम्हारा गति - विधि,
तुम्हारी बात - चीत
हू - ब - हू उसी प्रकार
नज़र आती है
पर, तुम नहीं

तो कितनी नीरस प्रतीत
होती हैं यह क्रीड़ाएं
कितनी अर्थवत्ता है,
इन क्रियाओं में,
कितनी निर्जीवता
और कृत्रिमता है
तुम्हारे अभिनय की
इन अदायों में।
अपनी और तुम्हारी
इन युगल क्रीड़ाओं को
स्पष्टता देखकर भी
कितना अकेलापन
टपकता है मेरे अपने अभिनय की
अभिव्यक्तियों में
हमारे युगल - गीतों के
कितने ही ग्रामाफोन रिकार्ड भरे पड़े हैं, पिया।
मुझे याद है कि रेडियो और ग्रामाफोन पर
जब हम दोनों
अपने रिकार्ड सुनते थे
तो समय कितना
माधुर्यपूर्ण हो जाता था।
जब तुम थे
तो कितना संगीत रस
और जीवन था
हम दोनों की आवाज़ों में
और अब जब तुम नहीं
तो कितना सुनसान है
तुम्हारे स्वर का सहसंगीत यह

मेरा स्वर
इन फोटो - चित्रों
इन चलचित्रों के होते हुए भी
कितना सूना और कृत्रिम रह गया है
मेरा यह अस्तित्व, मेरा केवल अभिनय स्वरूप
यह शेष जीवन
और मेरा यंत्रस्वरूप
यह स्वर
जिस प्रकार बंदी है फ़ोटो - चित्रों में
तुम्हारे सुंदर कलेवर का अस्तित्व,
जिस प्रकार बंदी है
रिकार्डों में तुम्हारा
संगीत भरा स्वर
इसी प्रकार,
साजन,
बंदी बनाया है
मैंने तुमको अपनी याद का
प्रतिदिन और प्रतिक्षण
प्रस्फुटित होता है
मेरी याद से तुम्हारे सुन्दर कलेवर का अस्तित्व
तुम्हारा कल्लोलपूर्ण चरित्र,
और तुम्हारा संगीत भरा स्वर ।
जिस से लगता है कि
लोप हो गया है मेरा यह कृत्रिम अस्तित्व
तुम्हारे सुंदर कलेवर के अस्तित्व में
मेरा यह नीरस चरित्र,
तुम्हारे कल्लोलपूर्ण चरित्र में
और मेरा सूना स्वर
तुम्हारे संगीत भरे स्वर में —
तुम मेरी याद के बंदी हो ।

जन्मांधर मानव

मैं सूर नहीं हूं
पर, लोगों ने मुझे
सूरदास का नाम दिया है,
मैं जन्मांधर हूं,
मैं चलती फिरती
मूर्ति हूं
मुझे मेरे देव
नज़र नहीं आते
पर, मैं देव की ओर रुख कर
मंदिर की देहरी में
एक ओर
कमरे के द्वार के साथ
लगा रहता हूं—
मैं सजीव ही
अन्तर्ध्यान हूं

× × ×

मैं जन्मांधर हूं
मैंने तिमिर - देव को
अपना देव बनाया है,
तिमिर का मुझ में
निवास है
मां के
तिमिर कूप में सुसज्जित हो
मैंने जीवन के

तिमिर - सागर में
प्रवेश किया है
और आखिर
तिमिर में ही
तल्लीन हो जाने का
निश्चय किया है,
मेरा शैशव तिमिरमय था,
मेरा यौवन तिमिरमय
और अब मेरा
प्रौढ़त्व भी तिमिरमय
मैं तिमिर में तिमिर हो गया हूं
यह मेरा सौभाग्य है
क्योंकि तिमिर, अज्ञान की भांति,
मौलिक है, यथार्थ है,
सूर्य, चंद्र और दीपक
इसको दूर करने के कृत्रिम साधन हैं
अत: मैं मौलिक एवं यथाथ देव हूं

× × ×

मैं जन्माधर हूं
मुझमें रूप, लावण्य और
प्राकृतिक सौंदर्य की
कोई भावना नहीं,
मैं अपनी प्रियतमा को,
उसकी प्रिय आकृति का
दृगरस - पान किये बिना ही,
प्यार करता हूं
मुझे स्वयं अपने आकार का भी
ध्यान नहीं
सूर्य, शशि, तारागन, मेघ,
इन्द्रधनुष, गगन, नदि, नाले,

निर्झर, सागर और हिम पर्वत
और उनके रूप - रंग
केवल मेरी काल्पनिक
रचनायें हैं—
मेरे निकट
सभी वर्ण एक वर्ण—
कृष्ण - वर्ण हैं,
मैं उसी रंग में रंगा हूं

× × ×

मैं जन्मांधर हूं
मैं स्पर्श और शब्द के सहारे
तिमिर को प्रकाश में
परिणत करने की
चेष्टा करता हूं
इन्हीं के द्वारा मैंने
विद्या - प्रकाश पाया,
पर मेरे इस ज्ञान - प्रकाश की
रश्मियां भी
तिमिरमयी हो गईं,
इस तममय प्रकाश के
आवरण में
सुकर्म - कुकर्म एक रूप हो गये,
तिमिर और प्रकाश में भेद,
लुप्त हो गया।

× × ×

मैं जन्मांधर हूं
मैं मानव - समाज से पृथक
नहीं हूं,
इस समाज में मैं अकेला

भी नहीं हूं
यह समस्त समाज
किसी न किसी मात्रा में
नेत्रहीन है
जो कोई जितना जानता है ?
उसी मात्रा में वह सनेत्र है,
अन्यथा अनेत्र,
ज्ञान - मात्रा के अनुसार
किसी के चक्षु
अधखुले हैं,
किसी के खंड रूप से
और फिर वह
अपने बाह्य अपूर्ण - खुले नेत्रों से
अपना समीपवर्ती सीमित
संसार ही देख पाता है
और उसकी दृष्टि
प्रस्तुत जीवित संसार से
आगे नहीं जा पाती
किन्तु, मेरे पूर्ण नेत्र
अन्दर की ओर खुले हैं
मुझे इन आन्तरिक
चक्षुओं से
अपना सकल तिमिर ब्रह्मांड
अखंड रूप से
द्रष्टिगोचर होता है
और मेरे
प्रस्तुत और भावी
तिमिर - संसारों के मध्य
कोई भेद - रेखा भी नहीं

इस नाते अपेक्षतय: मैं धन्य हूं

× × ×

मैं जन्मांधर हूं
पर हूं तो मानव
मानव की सकल
शक्तियों का स्वामी हूं
मैं योधा धृतराष्ट्र हूं
और इस्पात की वज्र
भीम - मूर्ति को
एक ही आलिंगन - पाश से
चूर - चूर कर देने की
सामर्थ्य रखता हूं—
मैं महाकवि
सूरदास हूं
और सूरसागर आदि
अनेक महाकाव्यों की
रचना कर सकता हूं ;
मैं वीर शिरोमणि
पृथ्वीराज चौहान हूँ
और क्षण - भर में
केवल चन्द्र वरदाई के
कविता - ध्वनि - संकेत से,
अपना शर - लक्ष्य बना कर
सम्राट मुहम्मद गौरी को
धराशायी कर सकता हूँ,
मैं जन्मांधर
मानव हूँ ।

अध्यापिका

मैं अध्यापिका हूं
मैं पुष्प - वाटिका की
मालिन हूं,
मेरी वाटिका में
जुही भी है, रात की रानी भी
चमेली, गेंदा, गुलाब
और मोतिया भी
पर मेरी वाटिका के
सभी प्रसून
अनखिली और अधखिली
कलियां हैं
जिन में छिपी है
सुरभि
सूर, तुलसी और मीरा की
भावुकता की,
जगदीश चन्द्र वसु की
जिज्ञासा की,
और कृष्ण, मुहम्मद, ईसा
नानक और गांधी की
दूरदर्शिता की,
परंच,
इनकी सुकुमारता से
प्रस्फुटित होती है
सरलता

महादेव शंकर की—

×　　×　　×

मैं इन कलियों को
सींचती हूं
अपने ज्ञान - जल से
इनका पोषण करती
अपने स्नेह - प्रेरणा - खाद से।
मेरे स्वरताल पर
यह कलियां
सहगान - करती हैं
समूह - नृत्य करती हैं,
झूमती हैं,
परस्पर अठखेलियां करती हैं,
प्यार - भरी क्रीड़ायें
और कल्लोल - आलिंगन
पर,
इनके इन
गायनों में, नृत्यों में
झूमों, अठखेलियों, क्रीड़ाओं
और कल्लोल - आलिंगनों में
टपकती है
प्यार की कोमलता,
अनुराग की विशुद्धता,
और स्वरूप की
शुद्धबुद्धता

×　　×　　×

मैं स्वयं कभी
इस वाटिका की

एक कली थी
अब मैं
परिपूर्ण, प्रफुल्ल कुसुम हूं
मेरे दैदीप्य
स्नातक रूप की
ज्योति से
यह कलियां
विशुद्ध - लालित्य पकड़ती हैं
और उच्छ्वासों
और निच्छ्वासों की
विविध - सुगंध से
सुगंध ग्रहण करती हैं,
जिन से विकसित होते हैं,
कालिदास, टैगोर,
मोती और जवाहर ।

× × ×

मेरे रूप, रंग
सरस नेत्र - नरगिसों
और मेरी अनुपम
अधर - कपोल पंखुड़ियों की
सुवास ने मुझे
असंख्य द्रष्टियों का
केन्द्र - बिन्दु बना दिया है
और अनगिनत भंवरे
मुझ पर
अपनी रसिकता
नयोच्छावर करने को
उत्सुक जान पड़ते हैं,
पर,
निर्वाचन - पात्र है

मेरा एक ही भंवरा
जिसकी मैं स्वयं
भंवरी बन चुकी हूं,
और जिसको मैंने
अपनी उन्नत पंखुड़ियों का
बंदी बना लिया है,
वह है
मेरा हृदय - सम्राट
परिणय - बद्ध
प्रियतम
जो
इसी वाटिका की
पूर्वकली
और अब
विकसित पुष्प है।

पल्लव - शयन

मैं अन्जान,
भोला बालक हूं,
मैं परिस्थितियों का
बंदी हूं,
मैं सागर की
लहरों पर
पल्लव के सहारे
अकेला तैरता हूं,
मुझे कुछ मालूम नहीं
यह लहरें
किन दिशाओं से
आती हैं
और मुझे
अपने मंद - तीव्र वेग से
उछाल कर
कहां कहां लिये जाती हैं
इन लहरों के उद्भव
और गति - विधि से
अनभिज्ञ
मैं अविरल
अपने पांव का
अंगुष्ठ - चूषण करता हुआ
अनियन्त्रित
उसी ओर चला जाता हूं
जिस ओर यह लहरें

मुझे लिये जाती हैं

× × ×

पल्लव - शयन पर
आश्रित
मैं अनगिनत
महत्वाकांक्षाओं, इच्छाओं और अभिलाषाओं का
अपने अन्त:स्तल में
सृजन और पोषण करता हूं
पर मेरी इन
भावनाओं के साथ
सागर की लहरें,
सर्वथा, निर्पेक्ष रहती हैं
आकस्मिक योगवश कभी
इनमें से किसी का
अनुकूल मेल
हो जाये तो हो जाये,
वरन्
मेरे अन्त: करण के
कूप में मेरी यह
महत्वाकांक्षाएं, इच्छाएं और
अभिलाशाएं
अन्त:सलिल के बुदबुदों के
समान उठती हैं
और फिर मिटकर
इसी कूप में
अंतर्लीन हो जाती हैं
और मैं स्वयं
लहरों के वेग से
अपने भोलेपन से

निरन्तर अंगुष्ठ - चूषण करता हुआ
दिशा - दिशा में उस क्षण तक
उछार खाता रहता हूं
जब तक कि
पल्लव का सहारा
मेरे नीचे से निकल
नहीं जाता
और मैं निराश्रित
होकर सागर के
अंत:स्तल में
अन्तर्लीन नहीं हो जाता।

वेषभूषा

सभ्यता मुझ से
सुसज्जित है
संस्कृति मेरे कारण
बहु - रंग रंजित है
मैंने मनुज को
पाशविकता से मुक्त कर
मानवता दी हैं
मैं प्रत्येक उच्च - निम्न का
नग्न - वेष्टन करती हूं
मैं जन साधारण की
लाजरक्षिणी हूं
मानव जीवन में मुझे
'वेषभूषा' का नाम
प्राप्त है ।

× × ×

मेरे विविध रूपों से
मानव
नारी है, नर है,
नागरिक है, सैनिक है,
भारतीय है, यूरोपीय है,
बर्मी है, अरबी है, अफ़गान है ।
देवगण भी
मेरी अनिवार्यता से
मुक्त नहीं
मेरे विविध

पारम्परीण अभिज्ञानों से
धनुर्धारी वंशीधर श्याम
और हर, हरि, ब्रह्मा,
रमा, शारदा और दुर्गा की
पहचान - विशेष होती है

× × ×

प्रत्यक्षत:
मैं मानव मानव
और देव देव में
विभिन्नता की परिचायिका दीख पड़ती हूं,
पर, वस्तुत:
मेरे अन्दर छिपा है
एक मानव
एक देव
और है मेरी अमित भिन्नता
इन दोनों के
ऐक्य का आकर्षक सौंदर्य
एवं मधुमय लावण्य।

× × ×

परन्तु
मेरी भिन्न - अमिकता से
भूल कर होता है मानव - दानव
और मेरे
अन्तर की वास्तविक एकता को
पहचान कर
वह होता है
देवरूप मानव।

एकता - प्रतीक

यद्यपि मेरा अस्तित्व
आदिकाल से
विद्यमान है
पर, प्राय: मैंने
जानकी - स्वयम्बर से
ख्याति ग्रहण की है
जबकि मैंने
उपालम्भ द्वारा लंकेश को
सचेत किया था कि
वह तो शिव - धनुष तोड़ कर
वैदेही को परिणय - बद्ध करने की
चेष्टा में है,
उधर उसकी बहिन
देह-त्याग कर गई है,
फिर मेरा विख्यात गर्जन
विद्युत रूप में
उस समय प्रकटिभूत हुआ
जब मैंने आततायी कंस को
चेतनाचेतावनी दी कि वह
निरविचार देवकीनंदन
शिशुओं का संहार
करता जा रहा है,
उसका घातक तो
अवतरण पाकर
किसी अन्य स्थान पर

पालन भी पा रहा है।
मेरे ही साधन - द्वारा
संजय ने
अंधे धृतराष्ट्र को
राज महल में
महाभारत-समर का
वृतांत सुनाया था,
प्राय: मुझे लोग
आकाशवाणी के नाम से
सम्बोधित करते हैं—

किन्तु मेरा यह नाम
केवल मेरी
सीमित प्रकृति का ही
द्योतक है
वस्तुत:
मैं ब्रह्मवाणी हूं
मैं विश्व-एकता की
प्रतीक हूं
मेरे निकट
प्रांतों, देश - देशान्तरों
ग्रहों, उपग्रहों की सीमाएं
कोई अस्तित्व नहीं रखतीं
प्रस्तुत युग में
रेडियो, टेलिविजन, वायरलैस,
टैलीग्राफ, टैलिफोन
मेरी आत्माभिव्यक्ति के
कितने ही विभिन्न
साधन हैं,
अंतरिक्ष की लहरों ने
मुझे अपना वाहन

प्रदान किया है,
इन तरंगों पर सवार होकर
मैं विश्व भर में
व्यापती हूं।

मैं आकाशवाणी हूं,
ब्रह्मांड की दिशा दिशा से
मैं प्यार के हिलोर लाकर,
असंख्य हृदयों को
आनंद-विह्वल करती हूं
देश - विदेशों से
हास्य - सामग्री एकत्रित कर
मानव - मनोरंजनार्थ
अट्टहास के साधन
प्रस्तुत करता हूं,
उनको रोष द्वारा उत्तेजित करने
के लिये,
शोक द्वारा रुलाने के लिये,
श्लाघा, अश्लाघा, उपालम्भ द्वारा
भरमाने लजाने अथवा वंदना
के लिये
लोक - लोक से
उपयुक्त विषय राशियों को चुरा लाती हूं
इन भावनाओं के
प्रस्तुतीकरण में
मैं जीव - जीवान्तर में
किसी भेद - भाव का
प्रदर्शन नहीं करती
मेरे निकट
इन सभी भावनाओं के
मध्य भी
कोई आंतरिक अंतर नहीं

मैं समस्त प्राणियों की
समग्र कल्पित भावनाओं की
अभिव्यक्ति का
एक रूप हूं
मुझे आकाशवाणी के
नाम से सम्बोधित करते हैं,
पर,
वस्तुतः
मैं ब्रह्मवाणी हूं।

गुह्य समाधान

जलचक्र - वेग से
पनचक्कियाँ चलीं
विद्युत - वेग से मिल-कलें,
पैट्रोल एवं डीजल वेग से
मोटर - गाड़ियों और यानों में
स्फुरण आया
वाष्प-वेग से रेल-इंजन
गतिवान हुए और
भावना-वेग ने
जीव-कलेवरों में
गमनता भरी !
तू प्राणियों की
जीवन-सूत्र है,
वेगता,
'पर, तेरा अपना
प्राण-सूत्र कहां है ?'—
इस पहेली का समाधान
गुह्य तू रखती है
केवल स्वयं
अपने अंतर में !

उषा की ज़मानत

प्रत्येक रात्रि को,
शयन के समय,
जब मैं तुम्हारा
चिन्तन करता हूं,
मित्र,
तो तुम एकाएक,
मेरी कल्पना के सन्मुख
आन उपस्थित होते हो।
एक हाथ में मेरे लिए
कमल - गुच्छ उपहार लिये
और दूसरे से
सद्भावना किरण - पुंज
मुझ पर छोड़
मेरे प्रति तुम
अपने मैत्री अनुराग की
अभिव्यक्ति करते हो
शायद
मुझ से खिलवाड़ के लिये
मेरे मनोरंजनार्थ,
अथवा मुझे आतंकित करने
भरमाने या रिझाने के लिये ही
नाना कौतुकपूर्ण
नर, नारी, पशु, पक्षी, कीट स्वरूप भरकर
विविध, विचित्र, मंगलामंगल,
नाटकीय वेशभूषाओं में,
गरुड़, मयूर, मृगराज अथवा मूषक आदि
विभिन्न वाहनों पर सवार

मेरे सम्मुख प्रस्तुत होते हो,
और सचमुच,
तुम्हारी इन विलक्षण बहुरूप
आकृतियों को देख कर मैं
इतना आनंद-मुग्ध हो जाता हूं
कि मुझ में उठकर
तुम्हारा पुष्पोपहार
स्वीकार करने की
क्षमता भी नहीं रहती।
इस आनंद-मधुरिम
अवस्था में
न जाने कब मेरी
पलक लग जाती है
और अकस्मात, न जाने किस आरोप में
तुम और मेरी कल्पना,
दोनों एक साथ
मेरी निद्रा के
तमोमय कारागृह में
फांस लिये जाते हो,
और फिर
इस बंदीपन से
उस समय तक
मुक्त नहीं हो पाते
जब तक कि,
उषा,
अगली निशा तक,
अपनी निजी जमानत पर
प्रतिभूत करवा कर,
तुम दोनों को,
आजाद नहीं करवा देती।

पराकाष्ठा

मैं तुम्हारा
आराधक मानव हूं,
हृदयेश,
और तुम मेरे
आराध्य देव।
यह कल्पना करना,
मेरी सामर्थ्य में
नहीं है कि
तुम्हारी दृष्टि में
इस विश्व में
कौन सा जीवाकार
सुन्दरतम है
पर,
यह मेरी
उद्दंडता समझिये या मिथ्याभिमान
मैं सौंदर्य में
अपनी आकृति को ही
सकल जीवों में
श्रेष्ठतम मानता हूं,
और अनुरागवश,
अपनी कल्पना में
तुम्हें
मूर्तिमान करने के लिये,
मैंने तुम को
अपना आकार ही अर्पित
किया है—

मेरे पास,
एक ओर मेरे अपने हस्तनिर्मित,
अथवा मुद्रित तुम्हारे चित्र हैं, देव,
और दूसरी ओर, दर्पण में,
तुम्हारी प्रकाश-रश्मियों द्वारा प्रतिबिम्बित
मेरी अपनी आकृति,
इन दोनों आकृतियों को देख कर
मैं तत्क्षण विह्वल हो उठता हूं
मुझे भान होता है कि
हमारी आकृतियों में कोई
भिन्नता नहीं
हमारा सौंदर्य समान है
और हमारी रूपरेखाएं समान
और कि हम दोनों ने
अपनी अपनी सौंदर्य-क्षुधा की
तृप्ति के लिये एक दूसरे का निर्माण किया है,
और कि वस्तुतः
मैं केवल तुम हूं
और तुम मैं
और लगता है,
देव,
मेरा मानव-अभिमान
देवाभिमान हो गया है,
एवं, मेरे स्वार्थमय प्यार की
पराकाष्ठा देखिये कि
मैं आपकी आराधना के बहाने
स्वयं आप अपना
आराधक बन गया हूं।

सौंदर्य - यात्रा

जीवन - यात्रा की
इस बस में बैठा हुआ
मैं
तीव्र - गति से
सीमा की ओर
बढ़ता जा रहा हूं
और अपने दायें बायें
असंख्य हरे हरे
वृक्ष, पेड़, खेत,
नदी-नाले, मकान, मन्दिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे
और अनगिनत पथगामी,
गडरिये कृषक और
उनकी भेड़ें और
पशु - धन
छोड़ता चला जाता हूं

× × ×

मुझे अपनी इस यात्रा की
दूरी का कोई अनुमान नहीं
नहीं इसकी पूर्ति के
समय का कोई ज्ञान है
मेरी इच्छा है कि
यह मात्रा बढ़ती ही
चली जाये
और इसका कोई
अंत न हो,

मैं अपनी सीमा पर
पहुंचने की स्वेच्छा
नहीं रखता,
परन्तु, मुझे मालूम है कि
यह किसी अज्ञात
दूरी और समय पर
स्वतः ही आन
उपस्थित होगी

× × ×

मेरे यात्रा-मार्ग में
कितने ही
अज्ञात पड़ाव आते हैं
जिनके नाम का भी
मुझे कोई पूर्व ज्ञान नहीं
इन पड़ावों पर भी
मेरी यात्रा की गति
मंद नहीं पड़ती है
पर फिर भी इन पड़ावों पर
मैं अपनी कामनाओं, भावनाओं
और आकांक्षाओं की
भूख-प्यास बुझा लेता हूं
और उनकी कीमत भी
चुका देता हूं।
मुझे मालूम नहीं कि
सीमा को लांघ कर
मैं फिर वापस भी
लौटूंगा या नहीं
फिर भी बस में
बैठे बैठे ही,
मैंने इस विषय पर

कितने ही दर्शन
घड़ डाले हैं
जिनका मूल्य और महत्व
केवल
मेरे अनुमान और
कल्पना के सौंदर्य में ही
मिलता है
मेरी यह यात्रा अनुमान और कल्पना की
सौंदर्य - यात्रा है।

लावण्य और प्यार

मैं कभी
अनन्य लावण्यमयी
रमणी थी,
यौवन-रमणीयता की
विश्व-प्रतियोगिता में
मैंने
"सौंदर्य-सम्राज्ञी" का
पद पाया था
और सहस्रों
लोलुप दृष्टियां
मेरी आकृति की
अभिरामता पर
केन्द्रित रहती थीं
जवानी और सुन्दरता की
गर्व-मदिरा में मस्त
इस शिखरावस्था में
मेरे अपने अरमान
कुछ कम न थे,
साजन,
मैं अपने ही अनुकूल
ललाम और आकर्षक
जीवन-साथी की
तलाश में थी
आखिर तुम्हें पाकर
मैंने
अपना भाग्य

सफल किया

× × ×

मैं भूली नहीं हूं
सुहाग की वह
प्रथम रात,
प्रियतम,
जब तुम ने मेरे
घूंघट का
अनावरण किया था
और हम दोनों की
नज़रों और सौंदर्यों का
पारस्परिक
सम्पर्क हुआ था
और हमारे
उत्सुक प्यारों ने
प्रस्फुटित होकर
अटूट
आलिंगन-पाश पाया था।

× × ×

कितना अनुपम था
वह अनुभव और दृश्य,
प्राण-वल्लभ।
उन घड़ियों की
वह मेरी
शर्मीली, शरबती आंखें,
वह मुस्कराते मेरे होंठ,
और वह रक्त-वर्णित
मेरे गोरे कपोल,
मैं जानती हूं,
अब भी

याद ग्राकर
तुम्हें
ग्रानंद-मुग्ध कर देते हैं।

× × ×

स्वयं मुझे भी
तुम्हारे प्रथम-दर्शन की
मनोरंजना याद है,
ग्रार्य ।
तुम्हारा वह विशाल ललाट
गठा हुग्रा तेजयुक्त गौर चेहरा,
तुम्हारे वह राजीव-नेत्र
ग्रौर मुस्कान भरी नज़रें
जो तुम ने
मेरे मदन-वदन पर
गाड़ दी थीं
ग्रौर फिर हटाने का
नाम भी न लेते थे।

× × ×

ग्रब वर्षों बीत चुके हैं
साजन,
वह दृश्य
ग्राज भी
पिछली रात्रि सा
ताजा प्रतीत होता है
ग्रब हम दोनों का
यौवन ग्रौर सौंदर्य
लोप हो चुका है
काल की झुर्रियों ने
हमारे वदनों की
सौंदर्य-कविताग्रों पर
रद्द-रेखाये फेर दी हैं,

हमारी आकृतियां
दंतावलियों की पुष्टता से
वंचित हो चुकी हैं
और हमारे कपोल
धंस कर
केवल त्वचास्वरूप
हो गये हैं,
हमारी भृकुटियां भी
अपना कृष्ण-वर्ण त्याग कर
श्वेत पड़ गई हैं,
हमारे चेहरों की
लालिमा का स्थान भी
पीतवर्ण ने ग्रस लिया है

× × ×

प्राण - वल्लभ,
यौवन और लावण्य ने तो
हमारे साथ
विश्वासघात किया
और स्वयं अपना आप भी
गंवाया
पर,
हमारा प्यार
अब भी हमारे जीवन को
सागर के
प्रकाश - स्तम्भ की भांति
निरंतर
आलोकित कर रहा है,
अब भी हमको
एक दूसरे के
साजन - सजनी होने का
गर्व है,

ग्रब भी हम
एक दूसरे के जीवन को
निजी जीवन समझते हैं,
वस्तुत:
एक दूसरे का ग्रटूट ग्रनुराग ही
हमारे
पारस्परिक जीवन का
ग्राधार है,
एक दूसरे के वियोग की
कल्पना मात्र से
हमारा रोम रोम
कांप उठता है,
ग्रब भी हम एक दूसरे के
सत्यवान ग्रौर सावित्री हैं,
शंकर ग्रौर गिरिजा हैं,
राघव ग्रौर जानकी हैं,
ग्रत्री ग्रौर ग्रनुसूया हैं।

× × ×

प्रस्तुत ग्रवस्था में भी
हमारे
एक दूसरे के प्रति
ग्ररमान यौवनपूर्ण हैं
इन्हीं ग्ररमानों की प्रेरणा से
मैं ग्रब भी
बालों में मांग काढ़ती हूं,
भाल पर
कुमकुम सजाती हूं
ग्रौर यथायोग्य
शृंगार-भूषण करती हूं,
क्या हुग्रा यदि
ग्रब मैं विश्व की
लावण्य - शिरोमणि नहीं हूं

मैं अब भी
अपने पिया की
हृदय - सम्राज्ञी हूं,
जिसका सर्वस्व
मेरा ही है।

× × ×

लावण्य ने शायद
इस तथ्य को नहीं
समझा था
कि जवानी ही जीवन
नहीं है
और बुढ़ापा ही मृत्यु।
मृत्यु के समीप तो
अवस्था का भेद
कोई भेद नहीं
सौंदर्य केवल सौंदर्य
यौवन को ही जीवन
मानता है
और उसके लोप के साथ
अपना आत्म - हनन भी
कर लेता है
लावण्य स्वयं तो
प्यार का उत्पत्तिकार है,
पर, प्यार के समीप
जीवनावस्था के भेद की
कोई मान्यता नहीं
लावण्य—
यौवन, स्वास्थ्य और
समृद्धि का बंदी है
और इनका ही मातृ - बंधु

प्यार
सकल
प्रतिबंधों से मुक्त है
और समग्र जीवन अस्तित्व का
सहचर मित्र ।
लावण्य छल है,
प्यार सत्य,
लावण्य अस्थाई है,
प्यार नित्य—
लावण्य प्यार नहीं,
पर प्यार स्वयं
मूर्तिमान लावण्य है ।

आभार

तेरा
आभार है,
रत्नावली,
जो मुझे
रामबोला से
तुलसीदास बनाया,
केवल
तेरा दैहिक रूप ही
मेरे प्रेम का
आसक्ति-केन्द्र था
तूने
मेरे रसिक अनुराग को
देव-रंजित कर दिया
तेरा आभार है
रत्नावली ।

× × ×

मेरे सरिस
असंख्य राम बोले
और तुझ जैसी अनगिनत रत्नावलियां
आज तक
देह-विलास-तृप्त होकर
काल-अंधकार में
लुप्त हो चुकी हैं
और कोई
उनका नाम भी

नहीं जानता
पर, अपने अद्भुत त्याग से
मुझे रामयश-गायक
बनाकर
तूने मेरे नाम को
अमरत्व प्रदान कर दिया है
तेरा आभार है रत्नावली।
× × ×

तेरे उपहास से
मेरा कवित्व विकसित हुआ
मेरी कविता से
राम चरितमानस का
उद्भव हुआ
रामबोला के रूप में
मैं केवल तेरी
विलास - तृप्ति का साधन था
अब तुलसीदास होकर
मैं
असंख्य अशान्त हृदयों को
तृप्त करता हूं।
तेरा आभार है
रत्नावली
जो मुझे रामबोला से
तुलसीदास बनाया।

फ़िल्म

मेरे जीवन की
फ़िल्म चलती है;
निश्चय
यह एक दुःखान्त
कहानी है
यद्यपि इसका अभ्युदय
सुखद !
चाहे यह वर्षों भी चले,
यह एक लघु कथा है;
मैं इस कथानक का
एकमात्र अभिनेता हूं
पर, मुझे इसके
प्लाट की तनिक भी
जानकारी नहीं !
न जाने किस गुप्त
निर्देशन के अनुसार
मैं अपना रोल
और वार्तालाप
सम्पन्न करता
चला जाता हूं !
मेरे इस रोल
और वार्तालाप का
संयोग स्वतः
कई अन्य अभिनेताओं के
रोल और वार्तालाप से
हो जाता है जो स्वयं
अपनी अपनी फ़िल्मों में

कार्यशील होते हैं
और जिनके अ ने कथानक
अलग अलग
मेरी कहानी के साथ
चलते हैं !
इस विलक्षण अछूते
संयोग के बिना
हमारी यह फ़िल्में
सम्पूर्ण नहीं होतीं।
मेरी कहानी
एक गुप्त कथा है
जो फिल्म की गति के
साथ उलझनमुक्त होती चली जाती है
मेरी इस गाथा में
नृत्य भी है,
संगीत भी और
रुदन-क्रंदन भी;
अनेक सुखद, दुखद, घृणास्पद
और मादक दृश्य
इसमें उद्भूत
होते हैं
जिनको
अन्य फ़िल्मों के
समदृश्यों के साथ
मिला कर
मैं अविरल
दृष्टिगत करता
चला जाता हूं !

आश्चर्य

मुझे बता दो
ना सखी,
यह विरह - वेदना
किस पदार्थ का नाम है !
मुझे तो आश्चर्य होता है
कि
तुम्हारे प्रियतम
क्यों
तुम से रुष्ट रहते हैं ।
तुम को तो मैं
हर समय
उदास ही देखती हूं ।
तुम प्रायः अपने प्रियतम
को
निष्ठुर, निर्दयी
और
पाषाण - हृदय
आदि
नामों से पुकारती हो
मैं तो निरंतर
मुदित और
प्रफुल्ल - वदन रहती हूं ।
मेरे कन्त तो मुझ से
कभी भी
रुष्ट नहीं होते ।
तुम तो

अपने लावण्य में
सानी नहीं रखतीं
और प्रकृति ने मुझे तो रूप
श्रृंगार से
संवारा भी नहीं है
फिर भी
मेरे हृदय - सम्राट
प्रतिक्षण
मेरे पास ही रहतें हैं
मैंने 'करुणामय'
स्नेही, 'प्रिया - वत्सल'
आदि
उनके कितने ही नाम रखे हैं ।

× × ×

मुझे तो आश्चर्य होता है,
सखी,
तुम अपने प्रियतम पर
हरदम
याद की अटूट टकटकी
लगाये रखती हो
और यह भी नहीं जानती
कि कभी तुम्हारा
पारस्परिक मिलन
होगा भी या नहीं ।
इधर मैं हूं
कि
स्वयं अपने
स्नेह - पात्र से मैं
कभी विमुख हो जाऊं
तो हो जाऊं

पर मेरे वल्लभ तो
क्षण-भर के लिये भी
मुझ से पृथक नहीं होते
मेरे साथ आलिंगन मेरे रसिया का अटूट है
मुझ से तो वह वापसी प्यार भी नहीं मांगते ।

× × ×

मुझे आश्चर्य होता है,
सखी,
कि तुम किस हृदयहीन,
अनभिज्ञ
और क्षण-भंगुर
मूर्ति पर अपना जीवन
और सौंदर्य
लुटा रही हो
मेरे प्रियतम तो सर्वयुग-सजीव हैं
मैं तो उनकी तल्लीनता में असीम-अथाह
आनंद-सागर में डूबी
रहती हूं ।

उपहास

मैं भारत का
प्रमुख मठाधीश
शंकराचार्य हूं,
मित्र,
और तुम मदीना के
प्रधान मुल्ला,
और राबर्ट टामस
हमारा तृतीय पारस्परिक मित्र
वैटिकन का पोप
मैंने ईश्वर को पाया,
तुमने अल्लाह् को
और राबर्ट ने गाड को
किन्तु हम तीनों ने
ईश्वर, अल्लाह
और गाड को
एक दूसरे से छीनने की
चेष्टा की
मैंने तुम्हारे अल्लाह को
अपनी ओर से
शुद्ध करके ईश्वर बनाया,
तुमने तब्लीग द्वारा
मेरे ईश्वर को अल्लाह,
और राबर्ट ने
मिशनरी भावना द्वारा
हम दोनों के ईश्वर और अल्लाह को

गाड

× × ×

हम ने अपनी अपनी
सफलता पर
विजय नाद किया
किन्तु, हमारी इस
विजय-भावना ने
हमारी मैत्री को
द्वेष में परिणत कर दिया
और वैमनस्य ने हमें
एक दूसरे का शत्रु बना दिया
हम आपस में लड़ पड़े
पर, मैंने
जिस को शुद्ध किया था,
तुमने जिसको
तब्लीग द्वारा पाक किया था
और राबर्ट ने जिसको
मिशनबद्ध करके पवित्र किया था
उसी ने हम तीनों की
हंसी उड़ायी
और कहा—
मैं तुम्हारी शुद्धि,
तब्लीग और मिशनकार्य
के पूर्व से ही
ईश्वर भी हूं, अल्लाह भी और
गाड भी
और हूं
अनादि काल से
शुद्ध, पाक और पवित्र।

तेरा आकर्षण अजेय है

हे प्राण-वल्लभ !
मैं तेरी ओर स्वतः आकर्षित
हुआ चला आता हूं।
मुझे ज्ञात नहीं
कि मेरा यह आकर्षण तेरे
बुलाने पर है,
अथवा
स्वयं मेरी अपनी प्रेरणा पर।
यहां तेरा आमंत्रण
और मेरी प्रेरणा
समानार्थ हो जाती हैं
मैं तो अनायास ही तेरी
ओर बढ़ा चला आता हूं—
तेरा आकर्षण अजेय है।

× × ×

मुझे यह चिन्ता नहीं
कि तेरा रूप मां काली सा
भयानक है,
अथवा
प्यारे श्याम-सुन्दर
नंद-नंदन सा
मन मोहक
यहां सौंदर्य-असौंदर्य की सीमायें
लुप्त हो जाती हैं
मैं तो स्वभावतः तेरी ओर

अग्रसर हो जाता हूं—
तेरा आकर्षण अजेय है।

× × ×

मुझे परवाह नहीं कि
स्नेहालिंगनार्थ
तुम मुझे अपना वक्ष
उपस्थित करोगे,
अथवा
दुतकार दोगे
यहां स्नेहास्नेह का सम्मिश्रण हो
जाता है
तेरी ओर तो मेरी
प्रगति निरंतर बढ़ती
चली जाती है—

तेरा आकर्षण अजेय है।
मैं क्या जानूं कि
मिलन पर भी
मेरे प्रति तेरा व्यवहार
बज्रवत् कठोर होगा
अथवा कमलवत् कोमल।
यहां निष्ठुरता या कोमलता का
भेद मिट जाता है।
तेरे आकर्षण का स्रोत तो अविरल
चलता जाता है—
तेरा आकर्षण अजेय है।

झूठी दीवारें

मैं ब्राह्मण हूं,
मित्र,
और तुम शेख़
हम दोनों
धार्मिक और अंधविश्वासी
विडम्बनाओं और
रीति-रिवाजों के
बंदी हैं।
तुम मौला का नाम
रेडियो पर श्रवण कर
आनंद-मुग्ध हो जाते हो
और मैं श्याम मुरलीधर की
श्लाघा सुनकर
हर्ष-विभोर हो जाता हूं।
फिर क्यों तुम
कृष्ण का गुण - गान
सुनकर रेडियो की
कमानी घुमा उसे
मौन कर देते हो और
मैं मुहम्मद-स्तुति
कर्णगोचर होने पर ?

हम मानव हैं दोनों,
मित्र,
हमारी भावनाएं एक हैं,
कामनाएं एक.
और

आकांक्षाएं एक;
फिर हमारे मध्य यह
भेद-अंतर की झूठी
दीवारें क्यों ?
पैगम्बर और अवतार की
पर्यायवाची
शब्द-ध्वनियों के अनुसार
एक ही ब्रह्म-शक्ति के
इन प्रतिनिधियों के प्रति
हमारी यह उपहासपूर्ण
अवहेलना क्यों ?

मैं आर्य हूं,
मैंने एक तुम्हारी ही
धर्म-अनुयाया के साथ
शरह-इस्लाम के अनुसार
परिणय-सम्पन्नता की है
और तुमने एक आर्य-रमणी
के साथ वैदिक-प्रथा के अनुमार;
परन्तु धर्म और
कानून की नज़र में
न ही हमारे दाम्पत्य को
मान्यता प्राप्त है और
न ही तुम्हारे अज़द्वाज को !
कृष्ण - मन्दिर में
मेरी भार्या को
कुरान - उच्चारण की
अनुमति नहीं और मस्जिद में
तुम्हारी अहलिया को
गीता-गान की आज्ञा
प्राप्त नहीं !

कृष्ण और करीम की
एक ही ब्रह्म-वाणी का
दोनों ओर से यह समान
तिरस्कार क्यों ?

काशी और काबा के
मध्य यह पारस्परिक
सांझा षड्यन्त्र क्यों ?
धर्म-निर्पेक्ष भारतवर्ष में भी
धर्म-निर्पेक्षता पर ही
यह प्रतिबंध क्यों ?
किन्तु भरोसा रखो,
मित्र,
हमें किसी चिंता की
आवश्यकता नहीं।
हमारे परिणय
प्रेम-परिणय हैं
और हमारी निजी
नज़रों में
स्वाभाविक,
रूढ़ियों से मुक्त,
सच्चे और
मानवीय परिणय !

दृग - रश्मियां

सर्वसाधारण ने
हमारा नामकरण
'तारागण' के सम्बोधन से
किया है ।
वह हमें अपने भाग्यों के
प्रवर्तक नक्षत्र मानते हैं
पर,
हमारा अपना कोई
अस्तित्व नहीं
हम अम्बर के
जालीदार नीलपट की
ओट में छिपे
किसी कान्हाकी
आलोकमयी
तिरछी और टेढ़ी
चक्षु-दृष्टि की
केवल रश्मियां हैं
जो इस बट के
छोटे बड़े छिद्रों से
छन कर
उन असंख्य
गोप गोपिकाओं को
दैदीप्यमान करती हैं
जो, रात्री के तिमिर में,
उसकी निस्तब्ध
वेणु के ताल पर

भव - कुंज के
रमणीक रंग-मंच पर
अपने अखण्ड रासनृत्य में
मुग्ध और लीन हैं।
परञ्च,
अपनी ही बांसुरी के
मधुर संगीत में मुग्ध,
हिलोरते हुए
स्वयं उस कान्ह के
शीश और वदन की
गति के साथ साथ
उसकी यह दृग-रश्मियां भी
हिलोर लेती हैं
जिस से,
स्थिति-परिवर्तन के कारण,
क्षण-प्रतिक्षण,
कुछ कुछ
नर्तक नर्तकियों पर से
इन रश्मियों की दीप्ति
सरक जाती है और
वह घोर तिमिरावरण में
लुप्त हो जाती हैं
इस प्रकार उनके
कान्ह-दृष्टि से
आलोकित तिमिरित होने का
यह अविरल क्रम
चलता ही रहता है।
किन्तु,
इस क्रम का
एक निरंतर प्रतिक्रम भी
असत्य नहीं

कान्ह की
इन्हीं दृग-रश्मियों द्वारा
वापस लौट कर
यह अस्खलित नृत्य-दृश्य
चक्षु-पुतलियों से होकर
उसके आन्तरिक नयन पटल पर
चित्रित हो जाता है
और लगता है कि
कान्ह स्वयं
इस चलचित्र को
अपने नेत्रों के
अन्तर्पटल पर धारण करके
रास नृत्य के
केन्द्रीय वेणु-नायक
हो गये हैं
और इस भव्य नृत्य के
सकल पात्र-पात्राएं
कान्ह के मानस पटल का
स्थाई अंग !

जे० एण्ड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू